RNI No. 7127/60

डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City / 411 2017-19

संघशक्ति

मासिक समाचार पत्रिका

वर्ष : 55 | अंक : 02 | कुल पृष्ठ : 36 | 4 फरवरी, 2018

शुल्क एक प्रति : 15/- | वार्षिक : 150/- रुपये | पंचवर्षीय 700/- रुपये | दस वर्षीय 1300/- रुपये

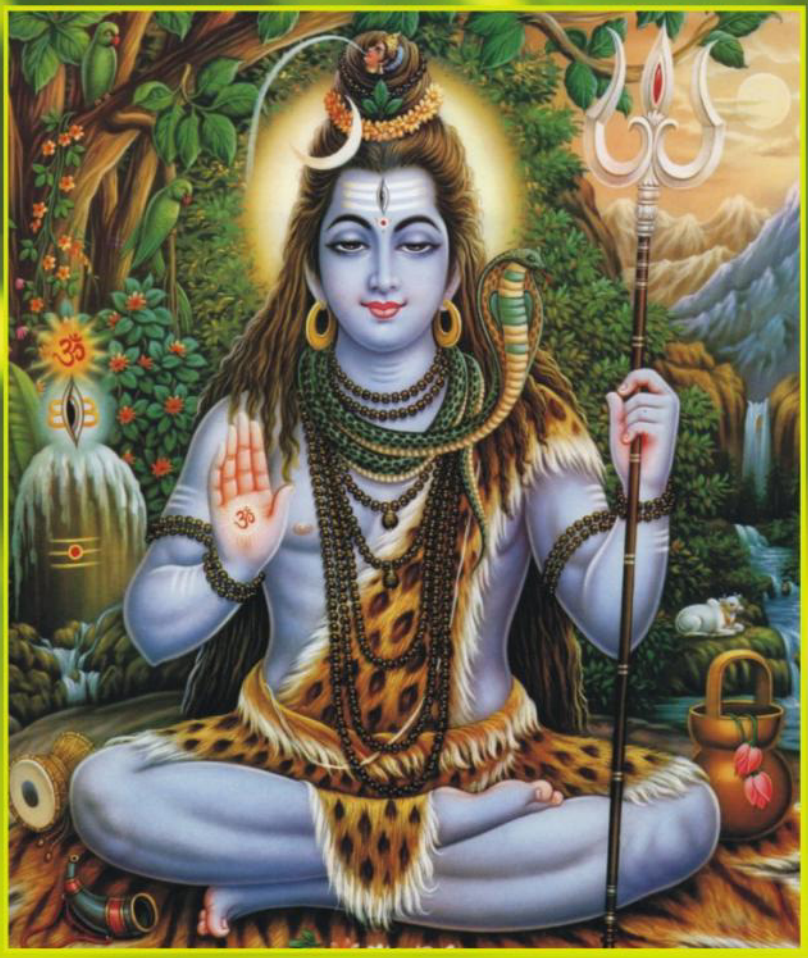

अभिनव तप से यहाँ जगत के भाग्य लिखे जाते हैं
यहाँ प्रेम में मुद मंगल हो, नारायण सोते हैं..... नारायण सोते हैं।
अब जागो शिव उतरी कब से है यहाँ गंग की धारा,
मन थकता नहीं हमारा।।

HITKARI & SWARAJ

हितकारी मेडिकोज

राजकीय चिकित्सालय के सामने, बाड़मेर-344001 राजस्थान

फोन : 02982226666

प्रो. पृथ्वी सिंह राठौड़

आजाद सिंह राठौड़

सिद्धार्थ सिंह राठौड़

-: सम्बंधित फर्म :-

हितकारी & स्वराज इंटरप्राइजेज प्राइवेट लिमिटेड

हितकारी प्रोजेक्ट्स प्राइवेट लिमिटेड

संघशक्ति

4 फरवरी, 2018

वर्ष : 55 अंक-02

-: सम्पादक :-

लक्ष्मणसिंह वेण्यांकाबास

शुल्क - एक प्रति : 15/ रुपये, वार्षिक : 150 रुपये, पंचवर्षीय : 700/- रुपये , दस वर्षीय : 1300 /- रुपये

विषय - सूची

❍ समाचार संक्षेप	✍	04
❍ चलता रहे मेरा संघ	✍ श्री भगवानसिंह रोलसाहबसर	05
❍ पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)	✍ श्री चैनसिंह बैठवास	07
❍ भगवन्नाम की महिमा	✍ स्वामी श्री यतीश्वरानन्द	09
❍ क्षत्रियत्व की प्रतिमूर्ति-दुर्गादास राठौड़	✍ श्री रेवंतसिंह पाटोदा	13
❍ विचार-सरिता (अष्टाविंश लहरी)	✍ श्री विचारक	14
❍ स्वभाव	✍ श्री गिरधारीसिंह डोभाड़ा	15
❍ भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में राजपूतों...	✍ श्री भंवरसिंह मांडासी	18
❍ भोला कात्याल	✍ स्वामी श्री सच्चिदानन्द	19
❍ प्रभु से अपनापन	✍ रश्मि रामदेरिया	22
❍ पदमणी पच्चीसी	✍ श्री मदनसिंह सोलंकिया तला	24
❍ ओरछा के राजा राम	✍ स्वामी श्री गोपाल आनन्द बाबा	25
❍ बुद्धि और पुरुषार्थ का महत्त्व	✍ श्री बलबीरसिंह	28
❍ समता मूलक समाज की अवधारणा	✍ श्री जैसू खानपुर	30
❍ भक्त शिरोमणि मीरा बाई	✍ श्री ब्रजराजसिंह राजावत खरेड़ा	31
❍ अपनी बात	✍	33

समाचार संक्षेप

स्थापना दिवस सम्पन्न :

श्री क्षत्रिय युवक संघ का 72वाँ स्थापना दिवस 22 दिसम्बर, 2017 को संघ की शाखाओं में उत्साहपूर्वक मनाया गया। इस वर्ष बीकानेर के स्वयंसेवकों ने बीकानेर में संघ स्थापना दिवस को बड़े रूप में मनाने का निर्णय लेकर तैयारी की। बीकानेर शहर और आसपास के क्षेत्र में समारोह हेतु आमंत्रण किया गया। लोग बड़ी संख्या में कार्यक्रम स्थल पर पहुँचे। माननीय संघप्रमुख साहब ने इस समारोह में क्षत्रिय शब्द को परिभाषित करते हुए कहा कि क्षत्रिय का अर्थ है क्षय से त्राण करने वाला। ***'परित्राणाय साधूनाम् विनाशाय च दुष्कृताम्'*** साधुजनों का रक्षण करना, दुष्टजनों का विनाश करना तथा धर्म की स्थापना करना। यही कार्य करने हेतु तो भगवान अवतरित होते हैं। ऐसा कार्य जिसमें क्षत्रिय स्वयं के लिये नहीं, दूसरों के लिये जीता है और अपने कर्तव्य पालन के लिये मृत्यु को भी गले लगाता है। ऐसे कार्य को संकुचित कैसे कहा जा सकता है।

संघ गीता द्वारा बताए गये क्षत्रिय के गुणों का उपार्जन करने के लिये गीता के द्वारा ही बताए गए अभ्यास और वैराग्य के मार्ग को अपना कर सामूहिक संस्कारमयी कर्मप्रणाली से आगे बढता है। संस्कार निर्माण का कार्य, गुणों को अर्जित करने का कार्य और वह भी पूरे समाज में सम्पन्न करना कोई थोड़े से समय का कार्य नहीं है। यह तो शताब्दियों की योजना है। इस मार्ग पर चलकर हमारा जीवन हम सार्थक करते हैं तथा समाज जीवन की सार्थकता में योगदान करते हैं। अनेक कारणों से और लम्बे समय से समाज जीवन में आई विकृतियों को दूर करने में समय भले ही लगे पर निराश न होकर सतत् कार्यशील रहने का मार्ग है संघ। वेद वाक्य के अनुसार उठो, जागो और विश्वात्मा के दृष्टिकोण से तुम्हारी आवश्यकता को पहचानो, को अपना कर उस आवश्यकता को पूरा करने हेतु सामर्थ्यवान बनने का कार्य है संघ।

जैसलमेर संभाग का कार्यक्रम म्याजलार में सामूहिक रूप से मनाया गया। जयपुर का कार्यक्रम संघशक्ति प्रांगण में सम्पन्न हुआ। बाड़मेर के मल्लीनाथ छात्रावास में कार्यक्रम आयोजित हुआ। बनासकांठा प्रांत का रमणु में स्थित रोयल स्कूल में स्थापना दिवस मनाया गया। मुंबई में भायंदर में स्थापना दिवस का आयोजन हुआ। पूना का कार्यक्रम सुख सागर नगर स्थित दुर्गा माता मंदिर में रखा गया। महरोली (सीकर) का समाज भवन में, सिवाना का कल्लारायमलोत छात्रावास में, बालोतरा का दुर्गादास राजपूत बोर्डिंग में, कुचामन का आयुवान निकेतन में, भीनमाल का पुनासा गाँव में, जालोर का वीरमदेव छात्रावास में, पाली का वीर दुर्गादास छात्रावास में, सोजत सिटी में, शेरगढ का गोपालसर में, जोधपुर का संभागीय कार्यालय तनायन में, उदयपुर में, भूपाल राजपूत छात्रावास चित्तौड़गढ़ में, खोडियार प्रान्त का सामपुरा में, चांधन में, कोटनपेट स्थित चामुंडा माता मंदिर बंगलोर में व अनेक शाखाओं में कार्यक्रम आयोजित हुए।

समीक्षा बैठक :

संघ की अर्धवार्षिक समीक्षा बैठक 17 दिसम्बर को संघशक्ति प्रांगण जयपुर में सम्पन्न हुई। उच्च प्रशिक्षण शिविर पुष्कर के बाद के अब तक के समय में संघ की सभी गतिविधियों की समीक्षा की गई। विभिन्न प्रकोष्ठों की प्रगति रिपोर्ट प्रस्तुत की गई। शिविरों के संचालन, शिविरों की तैयारी, बाल शिविरों के संचालन आदि के लिये आवश्यक निर्देश दिए गये। 50 वर्ष से कम आयु के स्वयंसेवकों को गुरुत्तर उत्तरदायित्व निभाने के लिये तैयार करने पर ध्यान देने के निर्देश मिले। प्रकोष्ठों का गठन हुआ। अब से संघ का नया सत्र संघ स्थापना दिवस से प्रारम्भ होगा।

शिविर :

दिसम्बर माह में शीतकालीन प्रशिक्षण शिविर सम्पन्न हुए। जालोर, गड़ियाला (जिला-बीकानेर), तेना (जिला-जोधपुर) और रोजदा (जिला-जयपुर) में माध्यमिक प्रशिक्षण शिविर सम्पन्न हुए। ढीमा (जिला-बनासकांठा), डोभाड़ा (जिला-साबरकांठा), गांधीनगर (गुजरात), महिपालपुर (दिल्ली), सूरत (गुजरात), मिठड़ाऊ (जैसलमेर), नाग खजूरी (जिला-मन्दसौर), अयाना (जिला-रतलाम), कुलथाणा (जिला-प्रतापगढ़) में बालकों के प्राथमिक शिविर सम्पन्न हुए। जनवरी माह में अमरोहा (उ.प्रदेश) में बालकों का प्राथमिक शिविर हुआ। बीकानेर, कोटा, पुष्कर, पिलवई (जिला-मेहसाणा) में बालिकाओं के प्राथमिक शिविर सम्पन्न हुए। सर्दी के बावजूद सभी शिविरों में उत्साहपूर्ण वातावरण रहा।

चलता रहे मेरा संघ

(विवेकानन्दपुरम्, कन्याकुमारी में आयोजित द्वितीय दंपती शिविर में दिनांक 20.2.2013 को संघप्रमुखश्री भगवानसिंहजी रोलसाहबसर द्वारा उद्‌बोधित प्रात:कालीन उद्‌बोधन का संक्षेप।)

समाज में व्याप्त कर्तव्य भ्रष्टता व अन्य दोषों रूपी रोग दूर करने के लिये श्री क्षत्रिय युवक संघ की चिकित्सा पद्धति रामबाण पद्धति है किन्तु बहुत कड़वी है। सरल नहीं है संघ के इस साधना मार्ग पर चलना। समाज को मात्र एकत्रित करना होता, तो कार्य सरल हो सकता था। कुछ सामाजिक बुराइयों, कुप्रथाओं आदि को दूर करना भी सरल हो सकता था। परन्तु हजारों वर्षों से व्याप्त रोग को सरलता से दूर नहीं किया जा सकता है। और दूर भी वही कर सकता है, जो नीलकंठ बनने को तैयार हो। समुद्र मंथन हुआ तो जहर निकला। उस जहर को जब तक समाप्त नहीं किया जाए तब तक अन्य रत्नों की उपलब्धि कैसी? पर उस जहर को कौन पिए। समाज में व्याप्त दोषों को दूर करने के लिये अनेकों प्रयास हुए हैं पर ऐसे मंथन में प्राप्त कष्टों के, उपेक्षा के, असहयोग के, विरोध के जहर को पीने को कोई तैयार नहीं। यह सब पीने के लिये तो शंकर ही तैयार हो सकता है, हिम्मतवाला ही तैयार हो सकता है, सबका कल्याण चाहने वाला कोई शंकर ही तैयार हो सकता है। मंथन करने वाले, कुछ तो कठिनता देखकर पहले ही दूर हो जाते हैं, अन्य दूर न हुए पर जहर नहीं पीना चाहते। समाज में लोकेषणा चाहने वालों की कमी नहीं है पर अपने को मिटाकर, नींव के पत्थर बनकर रहने वाले कहाँ से आएँ? वे कहाँ से आएँ जो टहनी बनने को तैयार हों। पंछी तो आते हैं, डाली पर बैठते हैं और चाहे तभी उड़ जाते हैं। पंछियों का भार सहने वाली तो टहनी ही होती है। वह उड़ नहीं जाती। ऐसे कहाँ हैं जो अपने पंख स्वयं ही काट लेते हों और कहीं उड़ने, भटकने की संभावना ही समाप्त कर देते हों। शिविर में भी देख लें सुबह तीन बजे उठकर झाड़ू लगाने वाले कितने हैं। अपने उद्देश्य मार्ग पर बढते हुए, टहनी की तरह भटकने की संभावना ही समाप्त कर दें, ऐसा निर्माण ही संघ की चाह है।

तीर्थ की महत्ता सांसारिक आसक्ति के त्याग और श्रेष्ठ के उपार्जन में है। हम यहाँ से श्रेष्ठता ले जाएँ; विचारों में, व्यवहार में श्रेष्ठता को अपनाएँ और विचारों व व्यवहार की गंदगी का त्याग कर के जाएँ। तभी तीर्थ करने का महत्त्व है। शिविर में आने से हम समझें कि समाज की समस्त बुराइयाँ मेरे से होकर गुजरती हैं, उन बुराइयों से मैं यहाँ छुटकारा पाकर जाऊँ तो समाज में कुछ निर्मलता आएगी। तीर्थ में या शिविर में आया हूँ तो निर्मल होकर जाऊँ। तीर्थ में या शिविर में निर्मलता आवश्यक है। हम यहाँ फोटो खिचवाएँ और वापस जाकर बताएँ कि देखो हमने यह तीर्थ किया है, इससे क्या होगा, आवश्यकता तो है अंत:करण की शुद्धि की। जीवन में शुद्धता लाने के लिये ही तीर्थ या शिविर किए जाते हैं, इसे समझें और इसी मार्ग पर चलें। शास्त्रों को पढना अलग बात है और उनके अनुसार जीवन जीना अलग बात है। परमेश्वर के मार्ग के लिये उपयोगी जो कुछ है, वह हमारे जीवन में आए।

जो संघ के साथ नहीं चल सके वे पिछड़ गये और अन्यों के लिये पिछड़ने का मार्ग बता गए। जो जब चाहे उड़ जाएँ वे पंछी हुआ करते हैं, पर जो उड़ न सके वह है डाली जो दूसरों को आसरा देती है। छिछले पानी में मोती नहीं मिला करते, मोती पाने की अभिलाषा हो, कुछ श्रेष्ठ उपलब्धि की उमंग हो तो गहराई में जाना पड़ता है। जो उड़ने का ही रास्ता जानते हैं, वे रुकेंगे नहीं। जर्मनी में नेवी में भर्ती हो रही थी, माँग थी कि जो तैरना जानता है, उनकी आवश्यकता नहीं। सुनने में यह बात उल्टी लगती है। पर मानना था कि जो तैरना जानता है वह मुसीबत आने पर सबको छोड़कर कूद पड़ेगा किनारे के लिये। उनका लक्ष्य मात्र कमाई है, हर

संकट में साथ रहकर संकट का मुकाबला करना नहीं। हर परिस्थिति के दर्द को सहने वाले चाहिए। पंछी नहीं, डाली बनना है। अभी जो गीत हमने गाया, उसमें पूज्य तनसिंहजी ने यही दर्द पिरोया है-

कह दूँ फिर भी शेष रहेगी बात एक जो कहनी रे।
पंछी तो उड़ जाय मगर उड़ न सकेगी टहनी रे।।

जिसके दिल में, श्वास-श्वास में समाज का दर्द भरा हो, उसे अपनी मुक्ति नहीं चाहिए। विवेकानन्द जी स्वामी रामकृष्ण परमहंस के पास गए और पूछा कि क्या आपने ईश्वर को देखा है? स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने कहा कि हाँ मैंने देखा है और तुम्हें दिखा भी सकता हूँ। उन्होंने विवेकानन्द जी को समाधि का अनुभव करवाया और विवेकानन्द जी स्वामी रामकृष्ण परमहंस के सपने को पूरा करने में लगे रहे। यहाँ जो हमने देखा है, उसी चट्टान पर उन्हें स्फूरणा मिली कि कैसे इस कार्य को सम्पन्न किया जाय। फिर जीवन के अन्य सभी कार्य उनके लिये महत्त्वपूर्ण नहीं रहे। पू. तनसिंहजी की भी मुक्ति की स्थिति थी, पर समाज रूपी नाव को पार करना हो तो इस कार्य में डूबकर ही पार की जा सकती है।

कल दोषों की चर्चा चल रही थी। दहेज आदि दोषों के कारण भ्रूण हत्या पनपी। एक बुराई दूसरे दोषों को बुला लेती है। संघ का स्वयंसेवक यदि दारू पिता है तो मुझे सुनना ही पड़ेगा। अपने पन का फल भोगना ही पड़ेगा। इस मार्ग पर चलने वालों की छोटी-छोटी बातों पर भी यह सब तो सुनना ही पड़ेगा। यहाँ तो यही स्थिति है कि नाव में बैठ गया, तैरना आया नहीं है तो नाव से बंधकर ही रहना पड़ेगा, चाहे जो हिचकोले आ रहे हों। नेतृत्व की यह जिम्मेवारी भी हो जाती है कि जिनके कारण संघ पर अंगुली उठती है, उसको मुँह पर कहे। क्योंकि समाज भवन की नींव भरने का कार्य हो रहा है, उसके लिये कमजोर नहीं, लौह पुरुष चाहिए। धर्म-युद्ध में कोई अपना भी सामने आएगा तो भोगेगा। किसी भी प्रकार की दुष्टता अथवा आततायी पन सहन नहीं किया जा सकता। पूज्य तनसिंहजी को यह सब करना पड़ा। भाई तो वह है जो साथ चले। कोई कितना ही निकट हो, साथ चलकर भी साथ न दिया तो आलोचना तो होगी और वह सहन करनी ही पड़ेगी। केवल सिद्धान्त की ही व्याख्या न कर हमें अपने स्वयं के जीवन की भी व्याख्या करनी चाहिए कि कहीं मेरा आचरण तो ऐसा नहीं है, जिससे मेरे समाज, मेरे संघ, मेरे परिवार पर अंगुली उठती है।

आजकल हर उत्सव पर पैसों का ज्यादा प्रदर्शन हो रहा है। जन्म के बाद नामकरण आदि उत्सव बड़ी सादगी से सम्पन्न होते थे, अब वह सादगी नहीं रही खर्चा प्रारम्भ हो चुका है। जन्मदिन मनाने में हर वर्ष खर्चा किया जा रहा है। जन्मदिन मनाना तो आयातीत संस्कृति है। ढूंढ, छुछक के नाम पर अनाप-सनाप खर्च किया जा रहा है। ध्यान रहे, पैसों से नाम नहीं होता, समझदार लोग इसे दुरुपयोग ही बताते हैं। नाम तो होता है सद्कर्मों से। सद्कर्म करने वालों का तो डंका गूंजता है। जीवन में भी, बाद में भी। अत: हर प्रकार के दिखावे व खर्चे से बचें। लेने-देने की गलत परम्पराएँ न डालें। मृत्यु पर भी खर्चा किया जा रहा है। इससे कोई नाम नहीं होने वाला। जिसका परिणाम कष्टदायक हो उस राह पर चलें ही क्यों? जैसा कहा गया है-ऐसी करनी कर चलो, हम हंसें जग रोये। जिनका जीवन ऐसा बन जाए वे महान हैं और उनका तो मरण भी उत्सव बन जाता है। उनकी राह पर चलने का प्रयास रहे। माता-पिता अपने बच्चों के संस्कारों का संरक्षण करने में पूरी सजगता दिखाएँ। तभी हमारी भावी पीढी सुधरेगी। दंपती शिविर इस महत्त्व को उजागर करने और इसे अपनाने के लिये प्रोत्साहित करने के लिये ही लगाए जाते हैं। हमारी सभी प्रकार की बुराइयाँ त्यागनी ही पड़ेगी। बुराई त्यागने के प्रयास में जो परेशानियाँ आएँ, उन्हें पी जाने को नीलकंठ बनना ही होगा।

गतांक से आगे

पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)

''जो कुछ देखा, समझा व अनुभव किया''

– चैनसिंह बैठवास

सन् 1948, जनवरी की तीस तारीख को गाँधी जी हत्याकाण्ड में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रमुख गुरु गोलवलकर जी को बन्दी बना लिया गया और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। इसके विरोध में एक सत्याग्रह छिड़ गया। इस दमन चक्र के विरोध में असंख्य लोगों ने गिरफ्तारियाँ दी। पूज्य श्री तनसिहंजी ने कहा-''जब बिगुल बज जाती है तो सिपाही को लाईन में खड़े हो ही जाना चाहिए'', यही सोचकर वे भी सत्याग्रह में कूद पड़े और जेल में गये। जेल में उन्होंने देखा कि असंख्य लोग गिरफ्तार होकर जेल में तो आ गये, पर उनमें संयम व अनुशासन नाम की कोई चीज नजर न आयी। रोटियों पर झपटना, क्षमा याचना कर जेल से बाहर आना, ये सब पूज्यश्री को बड़ा ही अखरा। पूज्य श्री तनसिंहजी अपना दायित्व समझकर जेल में बने रहे, अडिग रहे। दो महिने जेल में रहने के बाद सम्मान के साथ बिना शर्त जेल से रिहा हुए। यह उनकी पहली जेल यात्रा थी।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर प्रतिबन्ध लगने के विरुद्ध पू. तनसिंहजी ने जेल जाने को अपना दायित्व क्यों समझा? पूज्यश्री तनसिंहजी जब कानून की पढाई के लिये नागपुर गये तो राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सम्पर्क में आये। इनकी कार्यप्रणाली व इनमें काम करने वाले लोगों को नजदीक से देखा तो इनके दिमाग में एक विचार आया कि यही प्रणाली मैं अपने पथ विचलित और स्वधर्म विस्मृत क्षत्रिय समाज में शुरू करूँ तो बेहतर परिणाम आयेंगे। जो लोग राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में हैं वे इस प्रणाली को कितना अनुकूल, अनुरूप और व्यावहारिक पा रहे हैं, यह तो वे जानें, परन्तु श्री क्षत्रिय युवक संघ में क्षत्रियोचित संस्कारों के निर्माण हेतु यह प्रणाली अनुकूल व व्यवहारिक लगी, इसलिए पूज्य श्री तनसिंहजी ने इस कार्यप्रणाली को श्री क्षत्रिय युवक संघ में अपना कर संघ को एक नया रूप प्रदान किया और इस नई कार्यप्रणाली के अनुसार समाज में कार्य प्रारम्भ किया। पूज्यश्री तनसिंहजी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सम्पर्क में आने के बाद नागपुर में पढाई के समय उनके कार्यक्रमों में सम्मिलित होते रहते थे पर कुछ कारण ऐसे रहे जिनकी वजह से वे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से अलग हो गये और अब उन्होंने अपना पूरा ध्यान श्री क्षत्रिय युवक संघ पर ही लगाया। क्योंकि वर्तमान कार्यप्रणाली राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में देखकर, इसे क्षत्रिय युवक संघ में अपनाया था, इसलिए जब उस पर संकट आया तो साथ निभाना अपना दायित्व माना।

पूज्य श्री तनसिंहजी ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रमुख गुरुजी के सम्बन्ध में लिखा,-''राष्ट्र प्रेम मेरा एक मात्र धर्म नहीं, यद्यपि वह भी मेरे धर्म का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। मेरे महान धर्म में राष्ट्र भक्ति का संपूर्ण रूप से समावेश है। पर गुरुजी! तुम इस महान धर्म को समझ नहीं पाओगे, क्योंकि एक तो वह क्षत्रियों का धर्म है और दूसरा तुम अंश को लेकर ही अब तक उसे पूर्ण मानने की हठधर्मी पर चलते जा रहे हो। तुम्हें याद ही होगा, एक बार तुम पर संकट के बादल फिर आये थे। राज्य के कोप भाजन बने और तुम्हारे क्रियाकलाप सिमट कर जेलों में भरने लगे। इस देश के असंख्य नौजवान तुम्हारे आह्वान पर स्वेच्छा से बंधनों में बंधने लगे। उस समय मैं तुमसे सम्बन्ध विच्छेद कर चुका था और तुम्हारे चेले मुझे संशय की निगाहों से देखा करते थे, फिर भी

वह एक राष्ट्रीय आह्वान था। असंख्य लोग न्याय की माँग के लिये जल में जा रहे थे, तो मुझे भी स्वतंत्रता अखरने लगी और मैं भी जेल में चला गया। वह मेरी पहली जेल यात्रा थी। यद्यपि उसके बाद मैं दो बार जेल जा चुका हूँ, पर वह मेरा पहला अवसर था और उस जेल यात्रा से तुम्हारा सीधा सम्बन्ध है। दो माह की जेल अवधि के बाद जब मैं बाहर आया, तो अपने साथ जेल जीवन में तुम्हारे शिष्यों के और भी गहरे अनुभव लेकर आया था। मेरे वे अनुभव तुमसे पृथकता के कारणों की और भी अधिक पुष्टि करते थे। तुम्हारे शिष्य जब माफी मांगते थे तो गुरुजी! मुझे बड़ा दु:ख होता था, यद्यपि मैं अब तुम्हारा शिष्य नहीं था, पर कोई बात नहीं, मेरी तुम्हारे प्रति सहानुभूति है। मेरा और तुम्हारा मार्ग अब अलग-अलग है, पर इसे गुरुद्रोह नहीं कहा जा सकता, क्योंकि तुम ठहरे गुरु घंटाल और मैं ठहरा एक क्षत्रिय।''

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की कार्यप्रणाली तो बेहतरीन है। इनके सिद्धान्त व इनकी कार्यप्रणाली में कोई दोष नहीं लेकिन इनमें काम करने वालों में से कुछ की कथनी व करनी एक नहीं,उसमें अन्तर था। वे अवसरवादी थे, कहते कुछ और करते कुछ और ही थे। सब एक जैसे हों, ऐसी बात भी नहीं, निष्ठावान लोग भी इसमें थे, पर उन कुछ कार्यकर्ताओं में अनुशासन, दृढता व स्थायित्व की कमी लगी, शायद इन्हीं कारणों की वजह से या और भी कारण रहे होंगे जिनकी वजह से पूज्य श्री तनसिंहजी को इनसे सम्बन्ध विच्छेद करना पड़ा।

क्षत्रिय समाज की दुर्दशा ने, इनके गिरते अस्तित्व ने पूज्य श्री तनसिंहजी को व्यथित कर दिया। उनकी व्यथा से एक संकल्प उपजा। उनकी व्यथा से उपजे संकल्प का नाम ही श्री क्षत्रिय युवक संघ है। यह श्री क्षत्रिय युवक संघ क्षत्रिय समाज के लिये तो संजीवनी शक्ति है ही, इतना ही नहीं, प्राणी मात्र के लिये भी संजीवनी शक्ति है। पूज्यश्री ने श्री क्षत्रिय युवक संघ के माध्यम से सुप्त पड़ी क्षात्र शक्ति को जाग्रत कर क्षत्रियों को अपनी शक्ति का भान कराना ही अपना ध्येय बना डाला। इस ध्येय पूर्ति के लिये उन्हें जहाँ भी, जैसे भी कोई अच्छी बात लगी, कोई अच्छी कार्य प्रणाली उनके सामने आयी, उसे अपनाने में कभी कोई परहेज नहीं किया। उन्होंने उसे ग्रहण किया, उसे अपना कर अपने संघ को बेहतर से बेहतर अपने समाज के लिये बनाया, इतना ही नहीं, बल्कि प्राणी मात्र के कल्याण के लिये भी बनाया।

(क्रमश:)

धर्म से बचने का बहाना

राजर्षि जनक के आध्यात्मिक उपदेश से सभासद्गण बड़े प्रभावित हुए। सभी ने धर्म एवं धार्मिक जीवन की भूरि-भूरि प्रशंसा की। इतने में एक सज्जन खड़े होकर बोल उठे-''राजन्! मुझे गृहस्थी ने इस तरह बांध रखा है कि मैं धर्म कार्य के लिये समय निकाल ही नहीं पाता हूँ।'' यह सुनकर सब चुप हो गये।

तभी जनक जी कहने लगे,-''सज्जनों! मैं उठना चाहता हूँ, किन्तु मुझे सिंहासन ने पकड़ रखा है, इसलिए मैं उठ नहीं पा रहा हूँ।'' यह सुन वही सज्जन कहने लगे,-''श्रीमान्! यह कैसे सम्भव हो सकता है कि सिंहासन किसी को पकड़ ले।'' जनक जी तुरन्त बोल उठे,-''तब यह भी कैसे सम्भव हो सकता है कि गृहस्थी ने आपको पकड़ रखा है? गृहस्थी में मोह आपने लगा रखा है और आप बहाना बनाते हैं कि गृहस्थी ने आपको पकड़ रखा है।'' अब सज्जन का समाधान हो चुका था।

गतांक से आगे

भगवन्नाम की महिमा

– स्वामी यतीश्वरानन्द

कुछ व्यावहारिक सुझाव :

सर्वप्रथम देह के स्तर से मानसिक स्तर पर उठो और फिर आध्यात्मिक स्तर पर उठने का प्रयत्न करो। उच्चतर आध्यात्मिक भावप्रवाहों के संस्पर्श में आने के पूर्व हममें विद्यमान निम्न भावप्रवाहों को निष्क्रिय करना होगा। जब निम्न भावतरंगें बहुत प्रबल हों, तो भगवन्नाम का जप बहुत तीव्रता और निष्ठा के साथ करो। हमारा पर्यावरण विभिन्न प्रकार से पैदा हो रही ध्वनि-तरंगों से पूर्ण है। ये हमारे अनजाने ही हमें प्रभावित करती है। रेडियो पर संगीत सुनने पर तुम विभिन्न प्रकार के संगीतों के अपने ऊपर पड़ रहे प्रभाव को पहचान सकोगे। कोई संगीत तुम्हारा बौद्धिक स्तर ऊँचा करता है, कोई तुम्हें चंचल बनाता है, तो कोई तुम्हें मानो पागल ही कर डालता है। बुरे संगीत के प्रभाव को भजनों और पावन स्तोत्र पाठादि से विफल करना सीखो।

व्यक्तिगत आन्तरिक संगीत का निर्माण करो। वस्तुत: वह निरंतर चल रहा है। मन को अन्तर्मुखी बनाकर ठीक से साधने पर उसे सुना जा सकता है। ''कृष्ण की बाँसुरी'' का हृदयसम्मोहनकारी मधुर संगीत भीतर सुना जा सकता है। वह हृदय को आनन्द से पूर्ण और देह और मन को शान्ति से प्लावित कर देता है।

जप शुरू करने के पहले श्रद्धा अत्यन्त आवश्यक है। प्रथम, यदि जप कुछ हद तक यंत्रवत् हो भी तो कुछ हर्ज नहीं। परन्तु व्यक्ति को मंत्र की शक्ति में विश्वास होना चाहिए। प्रारम्भिक साधक जानता है कि उसके बोध का केन्द्र लगातार बदल रहा है-कभी ऊपर जा रहा है तो कभी नीचे, इत्यादि। प्रत्येक साधक के लिये यह सबसे कठिन अवस्था है। शुरू में, नियमित समय में जप करते हुए जो भी परिणाम हो, अपार धैर्य के साथ उसे करते रहना चाहिए। यथासमय सफलता प्राप्त करने का यही एकमात्र उपाय है।

ध्यान या जप का अभ्यास करते समय तुम स्वयं को कभी तन्द्रा मत आने दो। यह बड़ा खतरनाक है। निद्रा, तन्द्रा तथा ध्यान को एक साथ कभी भी जोड़ना नहीं चाहिए। यदि तुम्हें खूब सुस्ती आती हो तो उठकर अपने कमरे में जप करते-करते जब तक सुस्ती नहीं चली जाती तब तक इधर-उधर चलते-फिरते रहो। जब मन अत्यन्त चंचल और बहिर्मुख होता है तब हमें चंचलता की ओर ध्यान दिये बिना जप में, यद्यपि वह यंत्रवत् क्यों न हो, लगे रहना चाहिए। इस तरह संपूर्ण मन चंचल नहीं हो सकता है।

अपने इष्ट के नाम या मंत्र के हर जप के साथ कल्पना करो कि तुम्हारा शरीर, मन और इन्द्रियाँ शुद्ध हो रही हैं। यह श्रद्धा दृढ़ करनी चाहिए क्योंकि जप के पीछे यही एक बात है। इष्ट मंत्र स्नायुओं को प्रशमित (शान्त) करता है, मन को शान्त कर शरीर में सहायकारी बदलाव करता है। जब मस्तिष्क अत्यन्त तनावपूर्ण अथवा अवसादपूर्ण स्थिति में आ जाए, तो तत्काल प्रभु का नाम गुनगुनाते हुए दिव्यत्व का चिंतन शुरू कर दो। यह कल्पना करो कि इससे शरीर एवं मस्तिष्क में एक नई लय के साथ संतुलन की स्थिति की शुरुआत हो रही है। यथार्थत: तुम अनुभव करोगे कि कैसे इससे सारा स्नायविक समूह प्रशमित हो रहा है, कैसे इसके द्वारा मस्तिष्क की बहिर्मुखी प्रवृत्ति अधिक से अधिक स्तब्ध हो रही है।

जप के साथ अथवा उसके पहले तुम प्राणायाम भी कर सकते हो। सुनियोजित, नियन्त्रित श्वास-प्रश्वास से प्रशान्ति आती है और स्नायु-तंत्र कुछ हद तक संतुलित होता है और यह तुम्हारी साधना में भी सहायक होता है। प्राणायाम करते समय मन को कुछ जोरदार सुझाव देने का प्रयत्न करो : ''मैं पवित्रता को भीतर ले रहा हूँ और प्रश्वास के साथ दुर्बलता बाहर निकाल रहा हूँ। मैं शान्ति भीतर ले रहा हूँ, सारी अशान्ति बाहर निकाल रहा हूँ। मैं

मुक्ति भीतर ले रहा हूँ और समस्त बन्धनों को बाहर निकाल रहा हूँ।'' जप करते समय भी ये सुझाव दिए जा सकते हैं। मुख्य साधना का आधार तैयार करने में ये बहुत सहायक होते हैं।

पवित्र विचार शरीर तथा मन में अवश्यम्भावी समन्वय लाते हैं। सोचो कि प्रत्येक मंत्र के प्रत्येक जप के साथ तुम पवित्र से पवित्रतर हो रहे हो। जप का प्रभाव तुम एकाएक नहीं जान सकते परन्तु कुछ अवधि तक नियमित रूप से तथा अध्यवसाय से करते रहने पर तुम्हें इसका अनुभव होगा और फिर कुछ वर्षों के बाद तुम यह जान कर अचम्भित हो जाओगे कि तुममें कितना बड़ा बदलाव आया है। प्रयोग के लिये कार्यक्षेत्र बहुत है। कुछ सीमा तक इस शरीर को और स्नायुओं को भी दिशाबद्ध तथा लयबद्ध करना है। तभी हम आध्यात्मिक साधनाओं तथा ध्यान के लिये उचित मनोदशायुक्त होंगे तथा उन्हें सही लगन तथा उचित रीति से करेंगे। बाकी सब तो प्रारम्भिक उपाय हैं।

इस रास्ते में सब कुछ कठिन है। मानसदर्शन कठिन, मन का नियंत्रण कठिन और ध्यान कठिन। जप भी कठिन है लेकिन उचित रीति से करने पर उतना कठिन नहीं। अत: नई शक्ति प्राप्त करनी होगी और इसके लिये दिए गए निर्देश बहुत सहायक हैं। शब्द तथा शब्द-प्रतीकों की महान शक्ति का लाभ उठाओ। तुम्हें यह अनुभव करने का अवश्य प्रयत्न करना चाहिए कि प्रभु का नाम-पवित्र मंत्र-तुम्हें पावन तथा उन्नत कर रहा है। समय आने पर तुम स्वयं जानोगे कि नूतनाभ्यासी साधक के जीवन में भगवन्नाम का लयबद्ध जप आध्यात्मिक साधना का अति महत्त्वपूर्ण भाग है।

शब्द-प्रतीकों की सहायता सदैव लो क्योंकि शब्द और विचार परस्पर सम्बन्धित हैं। विचार स्वयं को विभिन्न शब्दों से अभिव्यक्त करते हैं। अब, हम पाते हैं कि दिव्यभाव परमेश्वर के विभिन्न पवित्र नामों से अभिव्यक्त होता है। इसलिए हम आध्यात्मिक साधना में शब्द का प्रयोग करते हैं। शब्द की सहायता से पवित्र विचार मन में उठाना सुगमतर हो जाता है। हमें ध्यान रखना चाहिए कि शब्द-प्रतीक से हम उसमें निहित अर्थ की ओर बढ़ें अन्यथा शब्द हमारी कुछ भी मदद नहीं कर सकता। पहले बाह्य पूजा होती है। प्रत्येक साधक द्वारा अगला आध्यात्मिक अभ्याय जप और ध्यान है; और अन्त में बन्द या खुली आँखों से भी दिव्य सत्ता की सर्वव्यापकता का अनुभव होता है। यह उच्चतम अवस्था है और इसे कोई तभी प्राप्त कर सकता है जब वह पहले की सभी अवस्थाओं को क्रमश: पार करे।

शब्द-प्रतीक तथा प्रभु के पवित्र विचार में निश्चित रूप से सम्बन्ध दृढ़ करने का यत्न करो, ताकि शब्द-प्रतीक के सम्पर्क में आते ही दिव्य विचार उठे। जैसे कि टाइपरायटर की एक कल जब तुम दबाते हो तो उसी के अनुरूप अक्षर कागज पर छपता है, उसी प्रकार जैसे ही तुम शब्द-प्रतीक के संस्पर्श में आते हो तो तुममें तदनुरूप विचार उठना चाहिए और उसे तुम्हारी सहायता करना चाहिए। परन्तु इसके लिये प्रतिदिन सुनियोजित अभ्यास द्वारा इन दोनों में अत्यन्त सुनिश्चित सम्बन्ध अवश्य बनाना चाहिए।

चाहे तुम्हारे मन में प्रचण्ड अशान्ति का आवेग उठने वाला हो और वह तुम्हें कमजोर कर रख दे तो भी जप करो। यदि आवश्यक हो तो जोर से या कम से कम तुम्हें सुनाई दे, इतने जोर से जप करो। कई बार अति अशान्त अवस्था में मौन रहकर किया गया मानसिक जप पर्याप्त नहीं होता। सुनाई देने वाली ध्वनि भटकते मन को रोकती है। हमें ध्वनि-कम्पन के प्रभाव को कम नहीं आंकना चाहिए। हमारा संपूर्ण मन, यहाँ तक कि हमारा शरीर भी, भगवन्नाम का लयबद्ध कीर्तन होने पर प्रभावित होता है। जप मन को उच्चतर वैश्विक कम्पनों के अनुकूल बनाता है। यह मन को शान्त, उदात्त तथा केन्द्रि करता है। कुछ लोग ऊँची आवाज में जप जारी रखते हैं, और विशेष आध्यात्मिक लाभ पाते हैं। उच्चारण के बिना मानसिक जप से भी वैसा ही प्रभाव बनाया जा सकता है।

श्रीरामकृष्ण जप की तुलना उस जंजीर से करते थे जिसका एक सिरा नदी में डूबे एक बड़े कुन्दे से बँधा हो। जंजीर को पकड़े एक-एक कड़ी आगे बढ़ते तुम अन्त में कुन्दे को छूते हो। उसी प्रकार भगवन्नाम की प्रत्येक आवृत्ति तुम्हें भगवान के समीप ले जाती है। शब्द हमें ज्ञान की स्मृति दिलाता है और ज्ञान भगवान का सान्निध्य कराता है। ध्यान रहे कि गुण की दृष्टि से तुम्हारा जप बेहतर होता जाए। तुम्हें अपना जप सचेत होकर तथा ध्यानपूर्वक करना चाहिए और समय बीतने के साथ इसे बढ़ाना चाहिए। सदा जंजीर का ध्यान रखते हुए अगली कड़ी पकड़ने की चेष्टा करो। इस प्रकार तुम भगवान के समीपतर आते हुए अपने को ध्यान के लिये तैयार करते हो।

यदि हमें लगे कि हम बहे जा रहे हैं तो भी हमें जंजीर को अवश्य पकड़े रहना चाहिए। कई बार हम अपने समक्ष उपस्थित खतरे को बड़ा-चढ़ाकर समझते हैं। बाद में हमें पता चलता है कि हम अपनी सजीव कल्पना द्वारा उसे बड़ा बना रहे थे। परिस्थिति बुरी रही हो, लेकिन वह प्राय: इतनी बुरी नहीं होती, जितनी हम मान लेते हैं। प्राय: परिस्थितियाँ इतनी बुरी दिशा नहीं लेतीं, जैसी हम कल्पना करते हैं। और यदि परिस्थितियाँ सचमुच बहुत बुरी हों, तो भी संघर्ष त्याग कर बिना प्रतिकार के पराजय क्यों स्वीकार करते हो? ऐसी स्थिति में सदा अपनी प्रार्थना, जप करते रहो और यथासम्भव समस्या का सामना करने का प्रयत्न करो। यदि पराजित भी होओ, तो भी तुम्हारी पराजय सफलता की सीढ़ी बन जाएगी।

नियम तो यह है कि भगवन्नाम के जप के साथ भगवद्रूप का ध्यान किया जाए। लेकिन जब ध्यान के योग्य मन:स्थिति न हो, तब एक साथ, बिना व्यवधान के एक या दो हजार बार भगवन्नाम का जप किया जा सकता है। यदि यह कुछ यंत्रवत् भी हो जाये, तो कोई बात नहीं है। इस तरह अभ्यास करने पर, बाद में ध्यान करना आसान हो जाएगा। ध्यान, जप की अगली सीढ़ी है। जप, व्यवधानयुक्त ध्यान है। एक प्रकार से ध्यान को निरवच्छिन्न जप कहा जा सकता है और अवश्य, वह एक अधिक तीव्रतर प्रक्रिया है। जप में व्यवधानयुक्त शब्द और चिंतन रहता है, जबकि ध्यान में केवल व्यवधानरहित चिंतन मात्र रहता है। यदि हम ध्यान करना चाहते हैं, तो हमें पहले जप का अभ्यास करना चाहिए। प्रारम्भ से ही ध्यान नहीं किया जा सकता।

जब भी मानसिक संतुलन खोने का भय हो, तब भगवन्नाम का उच्चारण करो और अपने चेतना के केन्द्र में भगवद्रूप का ध्यान करने का प्रयत्न करो। शब्द को पकड़े रहो और उसके अर्थ का चिंतन करो। कुछ समय तक ऐसा करने में समर्थ होने पर महान स्थिरता प्राप्त होगी। तब हमारा अव्यवस्थित मन कुछ मात्रा में व्यवस्थित हो जाएगा और हमारा चिंतन तथा भावना अधिकाधिक स्पष्ट होंगे। जप अनेक बाधाओं को दूर कर साधक को ध्यान के लिये सक्षम बनाता है। तुम्हारी इच्छा हो या न हो, जप किये जाओ। मन में जप करने की इच्छा नहीं है, केवल इसीलिए जप करना बन्द क्यों करते हो? पराजय स्वीकार क्यों करते हो? अपने ही मन के द्वारा क्यों ठगे जाते हो? भगवन्नाम का जप करते रहो और उसके द्वारा प्रतिपादित आदर्श का चिंतन करते रहो और कभी हार न मानो। नाम का जप इस तरह करते रहो कि तुम्हारे कर्ण उसे सुनें और मन उसके अर्थ का चिंतन करे।

भगवन्नाम की महिमा :

साधना के प्रारम्भ में वास्तविक ध्यान के बारे में चिंता करने की आवश्यकता नहीं है। जप तथा इष्टदेवता का चिंतन करो। कालान्तर में जप विकसित होकर, ध्यान बन जाएगा। एक पात्र से दूसरे पात्र में डाली जा रही तेल धारावत् प्रत्यय की एकतानता ध्यान कहलाता है।

ध्यान द्वारा परमात्मा संसार से अधिक सत्य प्रतीत होने लगेंगे। और तभी वास्तविक ध्यान सम्भव हो सकेगा। प्रथम करणीय कार्य को पहले करो, और तब अगली अवस्था अपने आप उपस्थित होगी।

अपने तरीके से जप प्रारम्भ करो। ओंकार के वाचिक जप के साथ अपने को लयबद्ध करने के बाद

क्रमश: उपांशु जप किया जा सकता है, और भारतीय ऋषियों के शब्द-ब्रह्म अथवा यूनानी पाईथागोरियन दार्शनिकों के 'स्वर्गीय संगीत' के संस्पर्श में आया जा सकता है। लयपूर्ण शब्द का जप करो और जानो कि वह अनन्त सत्य, प्रेम, आनन्द-स्वरूप परमात्मा का प्रतीक है-उसकी एक अभिव्यक्ति है। अपने मन रूपी ''रेडियो'' को ठीक से मिलाने या समायोजित करने पर तुम विश्वजनीन स्पन्दनों के साथ संपर्क स्थापित कर सकते हो, जो तुम्हें विराट् मन (हिरण्यगर्भ) के संस्पर्श में ले जाएगा और उसके माध्यम से अपनी आत्मा की भी आत्मा, समस्त प्राणियों की आत्मा, सर्वव्यापी परमात्मा तक तुम पहुँच सकते हो।

सभी परिस्थितियों में जप करते रहो। साधक को प्राप्त पवित्र ''शक्ति मंत्र'' में व्यवधान दूर करने की तथा आध्यात्मिक चेतना जाग्रत करने की महान शक्ति है। यह वस्तुत: देवी अथवा काली कहलाने वाली जगदम्बा की शक्ति है, जो भगवान् श्रीरामकृष्ण के रूप में इस युग में आविर्भूत हुई है।

जप करते समय कभी-कभी साधक यदि अपनी जपमाला या हथेली से हृदय, मस्तक आदि चेतना के उच्चतर केन्द्रों को स्पर्श करे, तो यह काफी लाभदायक होता है। केन्द्र-विशेष के शारीरिक स्थान को स्पर्श करने से चेतना को उस स्थान पर केन्द्रित करना आसान होता है।

भगवन्नाम मन को एक तरह से सम्बल प्रदान करता है। किसी कठिन समस्या के उपस्थित होने पर शान्त रहकर थोड़ा आत्मनिरीक्षण करने का प्रयत्न करना चाहिए, तथा हृदय के अन्तस्थल से प्रभु से प्रार्थना करनी चाहिए। किसी समस्या के उपस्थित होने पर अपना संतुलन बिगड़ने क्यों देते हो? (जप रूपी) कड़ी को हाथों से छोड़ते ही तुम कहीं के नहीं रहते। जब कोई भी सहायता नहीं होती तब परमात्मा ही एकमात्र सहायक होते हैं, और परमात्मा का अर्थ है हममें विद्यमान आत्मा की भी परम आत्मा। जप आध्यात्मिक स्वहित के उपायों में से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एक उपाय है। वह हमें हमारी आत्मा की परम आत्मा के निकट से निकटतर ले जाता है।

हमारी अवस्था में वस्तुत: जप ही एकमात्र कार्य है, जो हम कर सकते हैं। हम उसे कभी-कभी भद्रता के तौर पर 'ध्यान' की संज्ञा देते हैं। नैतिक आचरण, कर्तव्य-पालन, जप, प्रार्थना, शास्त्रों का अध्ययन और मनन के यथासम्भव अभ्यास द्वारा पहले अपने को सक्षम बनाए बिना किसी भी प्रकार के उच्चस्तरीय ध्यान को करने का प्रश्न ही नहीं हो सकता। ये प्रारम्भिक साधनाएँ मन को विभिन्न विक्षेपों से दूर रखने तथा प्रारम्भिक अवस्था में हमें भगवच्चिन्तन में-भले ही व्यवधान सहित-लगाए रखने में हमारी सहायता करती है। बाद में निरंतर साधना द्वारा हम उसी चिन्तनप्रवाह को व्यवधान रहित बनाए रखने में समर्थ होंगे।

ज्यों-ज्यों हम देह और मन से, तथा मन-वचन और क्रिया में पवित्र से पवित्रतर होते जाएँगे, त्यों-त्यों हमारी एकाग्रता भी अधिकाधिक वर्धित होगी और ध्यान श्रेष्ठतर होता जाएगा। और तब कालान्तर में हम परमात्मा के साकार और निराकार दोनों रूपों का साक्षात्कार कर सकेंगे। तब हम अपने हृदय में ही ससीम के साथ असीम के, जीव और ईश्वर के, हमारी आत्मा से परमात्मा के, मिलन की अनुभूति कर सकेंगे। इस तरह ध्यान के लक्ष्य, उच्चतम अतिचेतनावस्था की प्राप्ति होती है, जब जीव अपने वास्तविक-स्वरूप, भगवत्-सत्ता का प्रत्यक्ष साक्षात्कार करता है और अपनी वास्तविक पूर्णता और मुक्ति, शान्ति और आनन्द का लाभ करता है।

भगवन्नाम सभी को शान्ति और धन्यता प्रदान करे।

बाहर की आँख खोलना जाग है, भीतर की आँख खोलना ध्यान है।

- श्री चन्द्रप्रभ

क्षत्रियत्व की प्रतिमूर्ति-दुर्गादास राठौड़

(दान)

– रेवंतसिंह पाटोदा

भगवान श्रीकृष्ण ने गीता के अठारहवें अध्याय के तैंयालिसवें श्लोक में क्षत्रिय के गुणों का वर्णन करते हुए बताया कि शौर्य, तेज, धैर्य, दक्षता, युद्ध से पलायन न करना, दानशीलता एवं ईश्वरीय भाव क्षत्रिय के स्वाभाविक गुण हैं। दुर्गादासजी इन सातों गुणों की प्रतिमूर्ति थे। विगत अंकों में हमने शौर्य, तेज, धैर्य, दक्षता एवं संघर्षप्रियता का विवेचन पढ़ा। इस अंक में प्रस्तुत है छठे गुण दानशीलता एवं दुर्गादासजी के जीवन का विवेचन।

शब्द कोष में दान का अर्थ होता है देना। लेने वाले से बदले में कुछ न लेने की चाह से उदारतापूर्वक देने का अर्थ दान कहलाता है। शास्त्र कहते हैं कि दान के लिये दाता में श्रद्धा का भाव होना चाहिए और लेने वाले से कुछ भी प्रयोजन सिद्धि की अपेक्षा नहीं रखनी चाहिए।

इस परिभाषा के साथ दुर्गादासजी के जीवन को देखा जाए तो वे अपने आप में अनूठे दानी थे। उनके 80 वर्ष के जीवन में से 60 वर्ष संघर्ष में बीते। उन साठ वर्षों में से 20 वर्ष महाराजा जसवंतसिंह जी के सेनानायक के रूप में वेतनभोगी कर्मचारी के रूप में बिताये। हम यहाँ उन्हें वेतनभोगी तकनीकी रूप से कह सकते हैं लेकिन क्या केवल वेतन की चाह में कोई व्यक्ति इस प्रकार अपने सुखों का त्याग कर सेवा में संलग्न होता है जैसे वे हुए। लेकिन फिर भी हम यह मान सकते हैं कि इन प्रारम्भ के 20 वर्षों में सेवा के बदले उन्होंने पारिश्रमिक पाया। लेकिन आगे के 40 वर्ष और इन 40 वर्षों में भी मध्य के बीस वर्ष 1678 से 1698 में औरंगजेब द्वारा अजीतसिंह को शासक स्वीकार करने तक का उनका संघर्ष निस्वार्थ भाव से, बिना किसी प्रतिकार की अपेक्षा के, किया गया संघर्ष क्या किसी दान से कम था? पल-पल में मृत्यु का साक्षात्कार कर अपने ही नहीं बल्कि पूरे परिवार के सुखों को त्याग कर निस्पृह भाव से उत्सर्ग मूलक संघर्ष में रत रहना किसी उच्च कोटि के दानी से ही संभव है और ऐसे ही दानी थे हमारे दुर्गा बाबा। उन्होंने महाराजा जसवंतसिंह के देहान्त के दिन से ही जोधपुर राजघराने से वेतन लेना बंद कर दिया था और जीवन पर्यन्त निस्वार्थ सेवा की। द्रव्य के दान से बड़ा दान अपने सुखों का दान होता है और अपने सुखों के दान से भी बड़ा दान अपने प्रियजनों एवं परिवार जनों के सुखों का दान होता है और इस दान को दुर्गा बाबा ने चरितार्थ कर दिखाया। अपने सुखों के दान से भी बड़ा त्याग (दान) अपने अहंकार का दान होता है। सब कुछ करने की स्थिति में होकर भी, पूरे संघर्ष के सूत्रधार होने पर भी उनकी इच्छा के विरुद्ध किए गए अजीतसिंह के उच्छृंखल व्यवहार को सहन करते हुए राष्ट्र की आवश्यकता के अनुकूल स्वयं को संयत कर संघर्ष जारी रखने का आदर्श दुर्गा बाबा जैसा दानवीर ही पेश कर सकता है। उनके जेहन में सदैव कर्तव्य ही बना रहा, अधिकार का कभी प्रश्न ही नहीं उभरा, इसी का परिणाम था कि वे जीवन पर्यन्त संघर्ष में रत रह पाये। वे सदैव बनजारे का सा जीवन जीते रहे, अपनी मातृभूमि से अगाध प्रेम होते हुए भी आवश्यक होने पर निरासक्त योगी की तरह छोड़कर चल दिए। मारवाड़ ही नहीं छोड़ा, बल्कि मेवाड़ छोड़ा और पूरा मालवा पार कर क्षिप्रा के तट पर अपना अन्तिम आश्रय बनाया। सब कुछ हासिल करने की क्षमता होते हुए भी सब कुछ छोड़ देना ही दान है और इस दान के दुर्गा बाबा आदर्श उदाहरण हैं। इतने लम्बे संघर्ष में अनेक अवसर ऐसे आये कि उनके सामने संघर्ष से विमुख होने के बदले लालच के पासे फैंके गए लेकिन उन्होंने निर्ममता पूर्वक उन सभी प्रस्तावों को नकार दिया। चाहे वह लालच शुजाअत खाँ द्वारा दिया गया हो, चाहे बहादुरशाह द्वारा। चाहे वह पासा जहाँदारशाह ने फैंका हो चाहे फरुर्खसियर ने, लेकिन हमारे दुर्गा बाबा जैसे दानवीर को कोई भी पासा नहीं आकृष्ट कर पाया। औरंगजेब ने तो उनके सामने मारवाड़ का शासक बनने तक का प्रस्ताव रखा लेकिन उसे पता नहीं था कि उसके सामने मध्यकालीन भारत का आदर्श क्षत्रिय था। निर्ममतापूर्वक उसके प्रस्ताव को ठुकरा दिया। कवि ने इस घटना को इन शब्दों में पेश किया है। औरंगजेब पूछता है-

औरंग एक दिन यौं कह्यौ, थनै वाल्हो कांई विशेष।
निज मुखड़े मांगो नि वो, देऊं थनै दुर्गेश।।

दुर्गा बाबा का जवाब एक दानवीर का जवाब था-

खग व्हाळी व्हाळो प्रभो, व्हाळो मुरधर देश।
श्याम धरम व्हाळो सदा, नित व्हाळो नरेश।।

विचार-सरिता

(अष्टविंश लहरी)

– विचारक

व्यक्ति के विचारों पर ही उसका जीवन टिका हुआ है। जिसका जैसा विचार, वैसी ही उसकी जीवन-शैली होगी। एक किसान की विचारधारा और एक राजनेता की विचारधारा में अन्तर रहेगा। इसीलिए तो विपरीत विचारधारा के कारण दोनों की जीवनशैली में अन्तर रहेगा। जिन-जिन की विचारधाराएँ मेल खाने वाली अर्थात्, विचारों में जहाँ समानता है वहाँ वे आपस में एकजुटता स्वीकारते हैं। समान विचारधारा के व्यक्ति मिलकर एक समूह या दल का निर्माण कर लेते हैं।

हर राजनैतिक दल की अपनी एक विचारधारा है। उसी के अनुसार वे अपने सिद्धान्त व एजेण्डा तैयार करते हैं और उसी विचारधारा के अन्य लोगों को जोड़कर उस विचारधारा के राहगीर बनाने का प्रयास करते हैं। मजबूत और जनहित वाली विचारधारा के कारण अधिक जन सहभागिता बनती है और वे सत्ताधीश बनने में सफल भी हो जाते हैं।

विचारों की विभिन्नता के कारण ही धर्मों का विभाजन हुआ। जन्म से हम सभी मनुष्य केवल मानव हैं पर भिन्न-भिन्न विचारों के कारण हिन्दु, मुसलमान, जैन, बौद्ध, सिख, ईसाई आदि धर्म बन गए। भिन्न-भिन्न उपासनाओं और उनके भिन्न-भिन्न उपास्यों के कारण कोई अपने को वैष्णव, कोई शाक, कोई शैव आदि मानकर आपसी मतभेदों में उलझ गए। मानवधर्म ही वास्तविक धर्म है जिसे हम सनातन धर्म भी कह सकते हैं। सनातन धर्म ही आदि अनादि का पौराणिक धर्म है परन्तु विचारों की विषमता के कारण विभिन्न धर्मावलम्बी अपने धर्म को श्रेष्ठ व दूसरे के धर्म को निकृष्ट बताने लगे। इसीलिए तो आज अनेक धर्म, सम्प्रदाय व मजहब बन गए।

हम जो वस्त्र पहनते हैं उसके पीछे भी विचारों की प्रधानता है। पहने जाने वाले परिधान से व्यक्ति के विचारों का परिचय होता है। परिधान का रंग, डिजाइन व आकार को देखकर हम पहनने वाले के विचारों से रूबरू होते हैं क्योंकि उसके परिधान का चयन ही उसके विचारों का परिचायक है। विचारों की सात्विकता या मलिनता का परिचायक उसका परिधान है। भोजनादि की पसन्द में भी विचार की ही प्रधानता है।

व्यक्तिक जीवन, सामाजिक जीवन, संघठन व व्यवसायिक जीवन में भी विचारों की भूमिका मुख्य होती है। परिवार में भी समान विचारधारा वाले लोगों का जीवन ज्यादा सुखी होता है। सुख के लिये धन की प्रचुरता का इतना महत्त्व नहीं है, जितना समान विचारधारा के लोगों का। दरिद्रता और अभाव में भी यदि सभी जन एक विचारधारा के लोग हैं तो वह परिवार ज्यादा सुखी है वनिस्पत उन लोगों के जो धनी हैं पर वैचारिक एकता नहीं है। विचारों की मतैक्यता का समूह में बड़ा भारी महत्त्व है।

अन्य समूहों में तो हम विचारानुसार, एक दूसरे से जुड़ते हैं पर विवाह-संस्कार के समय वर-वधू के विचारों की प्रधानता नहीं के बराबर देखी जाती है और वहाँ धन, सम्पदा व गौत्र को मध्यनजर रखते हुए सम्बन्ध कर देते हैं। जिसके परिणामस्वरूप बाद में कई प्रकार की विचारभ्रान्ति खड़ी हो जाती है और जीवन नरक बन जाता है।

वास्तव में देखा जाए तो मूलभूत सिद्धान्तों में हम सबका विचार समान है। सत्य, अहिंसा, ईमानदारी, दया आदि धर्म के जो मूल सिद्धान्त हैं उनमें कहीं भी मतभेद नहीं है। वेद की आज्ञा भी यही है। वेद कहता है-

ॐ समानोमंत्र समिति समानी, समानं मनः सह चित्तमेषाम समानं मंत्रमभिमन्त्रये वः, समानेन वो हविषा जुहोमि।।

(शेष पृष्ठ 23 पर)

स्वभाव

संकलन कर्ता–गिरधारीसिंह डोभाड़ा

स्वभाव नेचर (*Nature*) को कहते हैं, जो व्यक्ति या प्राणी का जातिगत प्राकृतिक गुण है। किसी व्यक्ति या प्राणी का अच्छा या बुरा जो कोई गुण है, उसके लिये कहते हैं, उसकी प्रकृति ही ऐसी है। व्यक्ति या प्राणी की अच्छी प्रकृति भी होती है और बुरी प्रकृति भी होती है। जो स्वभाव जन्मात है, जो प्रकृति जन्म से ही है, अर्थात् जातिगत है उसको बदलना लगभग असंभव है। गुजराती में एक कहावत है–'जो फटे पर मिटे नहीं, पडी परोडे भात' गुजरात के पाटण नगर में जो पटोडे–साड़ियाँ बनती थी उसकी भात–छपाई कपड़ा या साड़ी फट जाने पर भी मिटती नहीं थी। दूसरी भी एक कहावत है–'कुत्ते की पूंछ टेढी की टेढी ही रहेगी'। इस प्रकार किसी मनुष्य या प्राणी का स्वभाव जन्मजात है, जो उसका प्राकृतिक गुण है, उसे बदलना असंभव–सा है। गधे का स्वभाव लात मारना है, तो वह लात मारेगा ही। सांप का स्वभाव काटना है, तो वह काटेगा ही। उसमें कोई बदलाव नहीं आएगा। हिंसक प्राणियों का स्वभाव हिंसा करने का है तो वह हिंसा करेगा ही। यह हो सकता है कि बाघ या शेर को थोड़ा प्रशिक्षण देकर, थोड़ा डर दिखाकर, उससे सर्कस में थोड़ा करतब करवाया जा सके, लेकिन उसके हिंसक स्वभाव को पूरी तरह नहीं बदला जा सकता। उसका हिंसक स्वभाव ही उसके जीवन के लिये उपयुक्त है। उसको खुराक भी हिंसा करने से ही प्राप्त होती है। सांप अपने काटने के स्वभाव से ही अपनी रक्षा कर सकता है। सर्कस में करतब दिखाना शेर या बाघ का प्राकृतिक स्वभाव नहीं है।

कुत्ता स्वभाव से लालची होता है। उसे डंडा मारो तो वह दूर चला जाए, लेकिन रोटी का टुकड़ा दिखाने पर वह वापस पास आ जाएगा। वह यह भूल जाएगा कि अभी तो उसको डंडा मारा था। ऐसा होते हुए भी यह उसका जातिगत गुण है कि वह अपने मालिक का वफादार रहेगा। घोड़े का भी अपने मालिक के प्रति वफादार रहना जातिगत गुण है। किसी के प्राकृतिक गुण या स्वभाव को बदलना असंभव–सा है और उसको बदलना उसके धारक के लिये श्रेयस्कर भी नहीं है।

कुछ व्यक्ति लोभी, लालची, बेईमान, गद्दार, असत्यप्रिय इत्यादि होते हैं। उनके लिये यह कहते हैं कि वह तो स्वभाव से ही ऐसा है। उसका स्वभाव ही घमंडी और अविवेकी है। लेकिन ये गुण उसके स्वाभाविक गुण नहीं हैं। उसके जातिगत गुण नहीं हैं, इनमें बदलाव लाया जा सकता है। जातिगत गुण या प्राकृतिक स्वभाव में हो सकता है कुछ समय के लिये या कुछ अवसर पर उसमें बदलाव आ जाय, पर अवसर मिलते ही उसका जातिगत स्वभाव, उसका जन्मजात स्वभाव, उसका प्राकृतिक स्वभाव उभर आएगा। वह अपना असली, सही रूप दिखलाएगा ही।

एक राजा को बाघ पालने का शौक था। उसने दो बाघ पाल रखे थे। वह जहाँ भी जाता, अपने बाघों को साथ ले जाता। यहाँ तक कि दिन में या रात्रि में शयन करते समय भी उसके पलंग के पास ही ये बाघ बैठे रहते थे। एक दिन दोपहर के भोजन के बाद राजा आराम कर रहा था। राजा को नींद आ गई। बाघ पलंग के पास ही बैठे थे। कुछ समय बाद राजा को अपने एक पैर के तलवे में गीलापन महसूस हुआ। राजा की आँख खुल गई। देखा तो एक बाघ उसका तलवा चाट रहा है। राजा ने उस पाँव को खींचने का प्रयास किया तो वह बाघ गुर्राया। राजा ने नौकर को बुलाकर दूसरे बाघ को वहाँ से हटवा दिया और जो बाघ तलवा चाट रहा था उसे सिरहाने रखी पिस्तोल निकालकर गोली मार दी। ऐसा इसलिए हुआ कि उसने राजा का प्रसवेद चख लिया। उसका जातिगत हिंसक स्वभाव जाग उठा। गाय अपने बछड़े की रक्षा के लिये शेर का सामना भी करेगी। वह जानती है कि शेर उसे मार डालेगा, फिर भी वह अपने बछड़े को बचाने के लिये शेर का सामना करेगी, क्योंकि

ममता उसका प्राकृतिक स्वभाव है। संतान की रक्षा करना माता का गुण है। कुछ नारियाँ अपनी संतान की हत्या कर देती हैं, लेकिन यह उनका प्राकृतिक स्वभाव नहीं है, उसमें बदलाव लाया जा सकता है। सांपिन अपने ही बच्चे को खा जाती है, यह उसका प्राकृतिक स्वभाव है, उसमें बदलाव नहीं आ सकता।

प्रकृतिदत्त स्वभाव मनुष्य, पशु, पक्षी, जीव के जन्म के साथ ही उसमें आते हैं, उनमें बदलाव नहीं हो सकता। हो सकता है कि उनमें प्राकृतिक गुण कुछ समय के लिये सुसुप्त अवस्था में रह रहे हों, लेकिन अवसर मिलते ही ये स्वत: ही जाग्रत हो उठते हैं। महाभारत के युद्ध में महान योद्धा द्रोणाचार्य जब यह सुनते हैं कि अस्वस्थामा मारा गया तो उनके हाथ से शस्त्र गिर पड़ते हैं और वे पुत्र मोह में निराश होकर रथ में बैठ जाते हैं। द्रोणाचार्य भले ही महान योद्धा हो, लेकिन वे ब्राह्मण थे, उनका पुत्र मोह जाग्रत हो उठा। वे पुत्र की मृत्यु की खबर सुन नहीं सके। उनका पुत्र वियोग जाग्रत हो उठा और उनके हाथों से शस्त्र छूट गए।

महाभारत के युद्ध का ही एक दूसरा प्रसंग है। अर्जुन जब सुनता है कि अभिमन्यु का वध हो गया तो वह पुत्र मोह में निराश नहीं हो जाता, बल्कि उसी क्षण वह प्रतिज्ञा करता है कि अभिमन्यु मृत्यु का कारण बनने वाले जयद्रथ का सूर्यास्त से पहले वध कर दूंगा या स्वयं अग्नि प्रवेश कर लूंगा। अर्जुन भी तो एक पिता था। पुत्र वध की खबर ने उसे मोहग्रस्त नहीं कर दिया बल्कि उसका क्षत्रियत्व उसे ललकार उठा और सूर्यास्त से पहले जयद्रथ का वध कर दिया। द्रोणाचार्य के जातिगत स्वभाव ने उन्हें पुत्र मोह में निराश कर दिया जबकि अर्जुन का जातिगत स्वभाव, उसका क्षत्रियत्व उसे ललकार उठा। इस प्रकार जो स्वभाव जन्म जात है, प्रकृति प्रदत्त है, जातिगत है, उसमें बदलाव नहीं आ सकता। वह सुसुप्त अवस्था में हो तो प्रकट नहीं दिखता लेकिन अवसर आने पर वह अवश्य जाग उठता है। इसके लिये जरूरी है उचित संस्कार, उचित वातावरण उपस्थित करने की।

बाहरी गुण अहंकार, स्वार्थ, लोभ आदि स्वाभाविक या प्राकृतिक गुण नहीं हैं। इनमें बदलाव आ सकता है। योग्य वातावरण में उचित संस्कारों द्वारा बदलाव लाया जा सकता है। श्री क्षत्रिय युवक संघ अपनी शाखाओं में, शिविरों में अनुकूल वातावरण उत्पन्न कर शिविरार्थियों के स्वभाव में उचित परिवर्तन लाता है। खेल, चर्चा, सहगीत, बौद्धिक आदि के माध्यम से परिवर्तन का अभ्यास चलता है। एक खेल है जिसमें एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के सिर पर थप्पड़ मारकर कहता है 'चल रे बुद्धू, वाह रे बुद्धू'। जिसको बुद्धू कहा गया वह चाहे छोटा हो या बड़ा हो, उसे बुरा नहीं लगता। क्योंकि यह खेल है, खेलने वाले सब बन्धु हैं और बन्धुओं में अहंकार कैसा? इस प्रकार के खेलों से अहंकार पर चोट पड़ती है और चर्चाओं तथा बौद्धिकों से व्यक्तिगत अहंकार को सामाजिक स्वाभिमान में बदलने की प्रेरणा मिलती है। एक खेल में आमने-सामने दो दल बैठते हैं। एक दल का व्यक्ति अपने मन में एक से दस के बीच की कोई एक संख्या सोचता है। दूसरे दल का एक व्यक्ति तीन बार में वह संख्या बता देता है तो संख्या सोचने वाले दल को शिक्षा (छोटी सजा) दी जाती है और यदि तीन बार में नहीं बता पाता तो संख्या पूछनेवाले को शिक्षा मिलती है। व्यक्ति की सोई हुई ईमानदारी को फिसलने के अवसर होने पर भी जागृति मिलती है। इसी प्रकार दृढ़ता, संघर्षप्रियता, कष्ट सहिष्णुता आदि गुणों की जागृति हेतु भी विभिन्न खेल व कार्यक्रम रहते हैं।

श्री क्षत्रिय युवक संघ के हर खेल, हर चर्चा, हर कार्यक्रम द्वारा व्यक्ति के स्वभाव में परिवर्तन लाने का अभ्यास समाहित है। यह परिवर्तन नकारात्मक नहीं होता, व्यक्ति के प्रकृति प्रदान स्वभाव के अनुरूप होता है। व्यक्तिगत अहंकार को जातीय स्वाभिमान में, स्वार्थ को निस्वार्थता में, ईर्ष्या को हितैषिता में, असहयोग को सहयोग में, बेईमानी को ईमानदारी में, कृतघ्नता को कृतज्ञता में परिवर्तित करने का अभ्यास चलता रहता है। परिवर्तन किया जा रहा है, यह बताने की आवश्यकता

नहीं, लेकिन वातावरण ही ऐसा होता है कि व्यक्ति स्वयं ही अपने स्वभाव को सात्विकता की ओर ढालता रहता है। व्यष्टि से समष्टि की ओर विचारने लगता है। व्यक्ति को स्वयं को पता नहीं चलता लेकिन उसके व्यवहार से परिवर्तन प्रकट होता है। यही तो वास्तविक क्रांति है-

नाम पुराने अर्थ नये दे जीवन बदले क्रांति यही है।
सहयोगी जीवन के सपने मूर्त हुए रे स्वर्ग यही है।।

बाहरी स्वभाव, अर्थात् मनोगत स्वभाव में परिवर्तन लाया जा सकता है, सुधार लाया जा सकता है, लेकिन जो प्रकृति दत्त है, जो जातिगत है, उसमें बदलाव लाना नामुमकिन है। जातिगत स्वभाव को बदला नहीं जा सकता पर यदि वह सुसुप्त अवस्था में हो तो उसे जगाया जा सकता है। उसमें निखार लाया जा सकता है। क्षत्रिय का स्वभाव है-

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वर भावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्।।
गीता 18/43

शूरवीरता, तेजस्विता, धैर्य, दक्षता, चुनौति से पलायन न करना, दानवीरता और सब प्राणियों के प्रति ईश्वरीय भाव रखना ये क्षत्रिय के स्वभावगत कर्म हैं। इन गुणों को किसी पर थोपने से उनमें निखार नहीं लाया जा सकता, लेकिन जिसमें ये जन्मजात, जातिगत, प्रकृतिप्रदत्त गुण हैं और ये रुग्णावस्था में हों, सुसुप्त अवस्था में हों तो उचित औषधि (वातावरण व शिक्षा) देकर उस रुग्णावस्था को दूर किया जा सकता है। सुसुप्त अवस्था में से जगाया जा सकता है।

श्री क्षत्रिय युवक संघ गीता बोध के आधार पर अपने विविध कार्यक्रमों के द्वारा सुसुप्त अवस्था में पड़े हमारे प्रकृति प्रदत्त स्वभाव को जाग्रत करता है। उन्हें संवारता है, निखारता है। हमारा मनोगत स्वभाव जो तमस की ओर अग्रसर है, उसे सत की ओर मोड़ता है-

कदम बढा धरा तेरे बोझ से झुक जाएगी,
पहचान तेरे रूप को कल्पना नई करें।

संघ हमारे वास्तविक रूप की पहचान कराता है। हमारे स्वभाव को जाग्रत करता है। क्षत्रिय का कर्म कोई बाहर से थोपा हुआ नहीं है, बल्कि क्षत्रिय के स्वभावगत गुणों के कारण ईश्वर द्वारा सौंपा गया कर्म है। हमारा जन्म ही क्षात्र-कर्म के लिए है-

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परन्तप।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः।। गीता 18/41

हमारे स्वभाव से उत्पन्न गुण 'शौर्यं तेजो.....' के आधार पर ही हमें क्षात्रधर्म का कर्म परमेश्वर द्वारा सौंपा गया है।

कई सदियों से हम हमारे स्वभाव को भूल चुके हैं और हम व हमारा समाज पतन की डगर पर है। श्री क्षत्रिय युवक संघ हमारे कर्तव्य की याद दिलाता है-

- ***अब भी क्षत्रिय तुम उठते नहीं, फिर आखिर उठ के करोगे क्या?***
  वीरों का जीना जीते नहीं, बकरों की मौत मरोगे क्या?
  धर्म भ्रष्ट कर्तव्यहीन बन, जग में भी जीवोगे क्या?
- ***क्षत्रिय कुल में प्रभु जन्म दिया तो क्षत्रिय के हित में जीवन बिताऊँ।***

क्षत्रिय का हित क्या है? क्षत्रिय का हित है उसका स्वभागवत कर्म। संघ हमें हमारे स्वभाव को पहचानने और जाग्रत करने, संवारने का आह्वान करता है। संघ के इस यज्ञ में आहुति देना हमारा कर्तव्य है। हमारा सौभाग्य है।

- ***अब हम भी जाग उठे, लो हमने भी आँखें खोली।***
  युवक संघ खूंखार उठा लो जाति ने करवट बदली।।
- ***संघ ने शंख बजाया भैया सत्यजयी अब होगा रे।***
  क्षात्रधर्म की दिव्य प्रभा से जग उजियारा होगा रे।।
- ***युवक संघ है आया सबको एक सूत्र में लाने,***
  गत वैभव की शंख ध्वनि को घर-घर में पहुँचाने।।
- ***संघ मंत्र क्षत्रिय जाति की रग-रग में संचय करने,***
  युवा हृदय की तड़फन ले हम आज चले जग जय करने।
- ***संघ भूमि पर नियमित जाकर ऐसी दीक्षा पावें,***
  भाव कर्म को एक बनाकर व्यक्तिवाद बिसरावें।
- ***लक्ष्य तेरा भव्य सुन्दर, पंथ भी सबसे सुगमतर,***
  विघ्न बाधा देखकर क्यों भूलते हो स्वगुण राही।

गतांक से आगे

भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन में राजपूतों का योगदान

– संकलन – भंवरसिंह मांडासी

ऐसे समय में ही बठोठ-पाटोदा (जि. सीकर) के डूंगरसिंह-जवाहरसिंह (डूंगाजी-जवाहरजी) जैसे अंग्रेज विरोधी राजपूतों का प्रादुर्भाव हुआ। डूंगरसिंह शेखावत को ठिकानों और रजवाड़ों में अंग्रेजों का प्रवेश अच्छा नहीं लग रहा था। इन्होंने अपने लोगों से कहा हमारी धरती के अंग्रेज मालिक हो जायें, यह कैसे सहा जाय? दूसरों ने कहा अंग्रेजों से मुकाबला करने की हमारे पास क्या शक्ति है? परन्तु डूंगजी-जवाहरजी ने लोगों के हौसले बुलन्द किये। लोटिया जाट व करणिया मीणा जैसे साहसी लोग उनके साथ हो गए। एक दल बन गया था। शीघ्र ही शेखावाटी ब्रिगेड के मेजर फोरेस्टर की सेना पर आक्रमण किया और घोड़े, ऊँट आदि ले भागे। फोरेस्टर देखता रह गया। ऊँट-घोड़ों को दाना खिलाने के लिये पैसे भी चाहिए। रामगढ़ के सेठों से अपील की कि अंग्रेज जम गये तो सब गुलाम हो जायेंगे, धन दो अंग्रेजों से लड़ें। बाद में आपका धन लौटा दिया जाएगा। परन्तु सेठों ने डूंगजी-जवाहरजी को राजद्रोही समझकर सहायता नहीं की। करणिया मीणा व लोटिया जाट ने गुप्तचरों का कार्य कर पता लगाया कि रामगढ़ के सेठों का माल अजमेर की तरफ से आ रहा है। सबने मिलकर उस माल को लूट लिया। रामगढ़ के सेठों ने अपने हिमायती अंग्रेजों से शिकायत की। डूंगजी अपने ससुराल में थे। अंग्रेजों ने धोखे से पकड़ लिया व आगरा की जेल में बन्द कर दिया।

होली के दिन डूंगजी की ठकुरानी ने जवाहरजी को ताना दिया, आप मौज करते हो, भाई कैद में पड़ा हुआ है। उसी समय जवाहरजी करणिया मीणा और लोटिया जाट अपने दल के साथ आगरा की तरफ चल पड़े। लोटिया जाट व करणिया मीणा ने आगरा के किले के पास धूणी जमाई। साधु के वेश में दोनों ने तपस्या शुरू कर दी, अनेक व्यक्ति उनके पास आने लगे, सिद्ध-सन्त माने जाने लगे। डूंगजी से साधुवेश में बात की। डूंगजी को शीघ्र जेल से निकालने का आश्वासन देकर आये। जवाहरजी ने अपनी योजनानुसार बारात का रूप बनाया और आगरा की तरफ बढ़े। अचानक शोर कर प्रचारित किया गया कि दुल्हे के मामा मर गये। बारात शव-यात्रा में बदल गई व यमुना की तरफ बढ़ गई। इस बनावटी कार्य को करते-करते रात हो गई। रात्रि को वहीं छिप गये और बड़ी चतुराई से लोटिया ने किले के सीढ़ी लगाई, जिससे कई लोग किले में घुस गये। डूंगजी ने पहले अन्य कैदियों की बेड़ियाँ कटवाई। रस्से लटक रहे थे। शीघ्र बाहर निकलने की आपाधापी में पहरेदार जाग उठे। कैदियों और पहरेदारों में संघर्ष हुआ। कुछ कैदी मारे गये कुछ भाग गये। डूंगजी सुरक्षित अपने दल में आ पहुँचे। यह घटना 18 दिसम्बर सन् 1846 वि.सं. 1903 की है। वहाँ से डूंगजी सीकर पहुँचे व रामगढ़ के सेठों को कहलाया कि डूंगजी जेल से बाहर आ गया है। सावधान हो जाओ। इसके बाद अंग्रेजों से शिकायत करने वाले रामगढ़ के सेठों को लूटा।

योजना बनी कि अंग्रेजी छावनी नसीराबाद पर आक्रमण किया जाय और उसे लूटा जाय। डूंगजी व जवाहरजी का दल नसीराबाद छावनी में घुस गया और छावनी का खजाना लूट लिया। अंग्रेजी सेना देखती रह गई। यह घटना वि.सं. 1905 व ई. सन् 1848 में घटी थी। सदरलैण्ड ने नीमच की छावनी से सेना मंगाई और डूंगजी-जवाहरजी के पीछे दौड़ाई। अनेक राजाओं को पत्र लिखे कि ये उनको गिरफ्तार कर पेश करें। जोधपुर के राजा तख्तसिंह ने डूंगजी को और बीकानेर के राजा रतनसिंह ने जवाहरजी को अपने पास रख लिया। बहुत प्रयत्न करने पर भी रतनसिंह बीकानेर ने जवाहरजी को अंग्रेजों को नहीं सौंपा पर तख्तसिंह को विवश हो डूंगजी को सौंपना पड़ा। डूंगजी पर अंग्रेजी सरकार ने मुकदमा चलाया पर राजस्थान में बड़ा बखेड़ा होने की आशंका से

(शेष पृष्ठ 29 पर)

भोला कात्याल

– स्वामी सच्चिदानन्द

बौद्धिक दृष्टि से मनुष्यों को चार भागों में बांटा जाता है–1. बुद्धू, 2. भोला, 3. चतुर और 4. लुच्चा। बुद्धू वह कहलाता है जो बार–बार छला जाता है। एक बार के अनुभव से जो कुछ भी सीखता नहीं है और उसी गलती को दोहराता रहता है। वह बुद्धू होता है।

भोला उसको कहते हैं जो किसी भी व्यक्ति पर बिना सोचे समझे विश्वास कर बैठता है। बिना विश्वास विश्व के व्यवहार नहीं चलते यह हकीकत होते हुए भी जो आदमी नहीं करने जैसे पर विश्वास कर लेता है, सबको सज्जन समझता है, तो छला जाता है। वह भोला है।

चतुर वह है जो सामने वाले व्यक्ति की नियत समझ लेता है और तदनुसार उससे सम्बन्ध रखता है तथा व्यवहार करता है। चतुर व्यक्ति औरों को छलता नहीं है मगर कोई उसे छल नहीं सकता। सज्जनता भरी पारदर्शी बुद्धि चतुराई कहलाती है।

लुच्चा व्यक्ति दूसरों को छलता रहता है। उसमें सज्जनता नहीं होती। केवल स्वार्थ, स्वार्थ और स्वार्थ ही होता है। ऐसा व्यक्ति पूरी जिन्दगी अविश्वसनीय व दुर्जन बनकर जीता है।

ये चारों तत्त्व प्रकृतिजन्य होते हैं, मतलब स्वभाव से ही होते हैं। स्वभाव की जानकारी लम्बे समय के सहवास से मिलती है।

हमको एक भोले मानवी की बात यहाँ करनी है। ***भोला मानव शायद ही धनाढ्य होता है। ज्यादातर वह साधारण आजीविका पर जीने वाला या निर्धन ही होता है। धन कमाना और धन को संभालकर रखने के लिये जो चतुराई चाहिए वह उसमें नहीं होती। प्रथम तो उसको धन कमाना आता ही नहीं और यदि धन मिल भी जाता है तो वह संभाल नहीं पाएगा। धन, यौवन व नारी को संभाल सके, वह ही सुख पाता है। यदि संभाल नहीं सकता तो वे तीनों बेलगाम बन जाते हैं। बेलगामी बरबादी की पहली सीढ़ी है।***

सौराष्ट्र के गोहिलवाड़ के गाँव सनाली में भोला कात्याल नाम का एक काठी रहता था। (काठी लेगों से सौराष्ट्र के राजपूत रोटी का व्यवहार रखते हैं, मगर बेटी का नहीं। काठी से ही सौराष्ट्र को काठियावाड़ कहते हैं।) काठी स्वभाव से शूरवीर होते हैं। ***जो लोग जन्मजात शूरवीर होते हैं वे दीर्घ द्रष्टा शायद ही होते हैं। दीर्घ द्रष्टा बनिये होते हैं जो भविष्य का सोचते रहते हैं। भविष्य का नहीं सोचने वालों का बुढापा दुखपूर्ण होता है।*** कात्याल बुढा, खाने के लिये घर में कुछ भी नहीं था। अत: भूख से मरने का समय आ गया। पेंशन योजना पश्चिम की देन है। हमारे यहाँ ऐसी कोई व्यवस्था थी ही नहीं। अत: कई लोग बुढापे में दुखी जीवन जीते थे। 'गाँव में रहकर माँग कर खाना या बेचारा जीवन जीना, उससे बेहतर तो यह है कि कहीं दूर चला जाऊँ।' ऐसा सोचकर कात्याल तलवार लेकर एक दिन चल पड़ा। शूरवीर का गहना–तलवार। कपड़े ढंग के नहीं हैं तो चलेगा मगर बिना तलवार के नहीं चल सकता। ऐसे लोग शस्त्रजीवी कहलाते हैं। जो शस्त्रजीवी होते हैं, उनको दूसरा काम नहीं आता। बुद्ध ने निर्वाण के लिये गृहत्याग किया था। पर भारत में लाखों लोग पेट के लिये गृहत्याग करके जहाँ पेट भरा जा सकता है, वहाँ ठहर जाते हैं। आजीविका की तलाश में जो गृहत्यागी होकर दर–दर भटकते रहते हैं, उनका प्रारम्भिक जीवन सुखी नहीं होता। निर्वाण की खोज करने वालों की अपेक्षा आजीविका की खोज कर लेने वाले महान कहलाते हैं। कई बार तो आजीविका की खोज में असफल हुए लोग हारकर, थककर, निर्वाण की खोज में लग जाते हैं। ऐसे निर्वाण मार्गी को निर्वाण मिले या न मिले, मगर वे भूखे नहीं रहते। उनके लिये उत्तम आहार के ढेर यहाँ से ही शुरू हो जाते हैं।

आजीविका के लिये कात्याल गीर के जंगल में आये चाचई गाँव पहुँचा। वहाँ माणशिया वाला की हकूमत थी। (वाला, खाचर व खुमाण ये तीन काठी जाति की मुख्य शाखाएँ सौराष्ट्र में थी और हैं।) सौराष्ट्र की जीवनशैली अनुसार घर के पुरुष ड्योढी पर बैठते हैं। फिर एक बड़ा चौक और बाद में कमरे जिनमें महिलाएँ रहती हैं। ऊँचे परिवारों में मर्यादाओं का चुस्त पालन होता है। आपा माणशिया ड्योढी पर बैठे थे। कात्याल वहाँ पहुँचे। रामा-श्यामा हुई। पूछताछ हुई। कात्याल ने बताया,-'सेर बाजरे के लिय गाँव-गाँव घूम रहा हूँ। काठी का डीकरा हूँ। भीख तो माँग नहीं सकता।'

आपा ने देखा कि आदमी है पानीदार। पानीदार तलवार, पानीदार घोड़ी और पानीदार मानव दुर्लभ होता है। मगर पानीदार को पानीदार ही पहचान सकता है और हजम भी कर सकता है। आपा ने कात्याल को भैंसें चराने के लिये रख लिया। उस वक्त गाँवों में दो ही रोजगार थे-खेती व पशुपालन। तीसरा कोई धंधा था ही नहीं। कात्याल भैंसों को चरावे और मौज करे। भरपेट खान मिले और गहरी नींद सोने की सुविधा मिल जाए। जिसके सिर पर कोई तनाव न हो, उसको यदि ये दो चीज मिल जाती हों, वह धन्य बन जाता है।

उन दिनों में महिलाएँ कमरों में सोती, मेहमान व बुजुर्ग लोग ड्योढी में सोते। नौकर-चाकर पशुओं के बाड़े में सोते। कात्याल घोड़े के तबेले में सोता था। एक रात को उसने कोई आवाज सुनी। वह जमाना निश्चिन्त होकर सोने का नहीं था। चोर-लुटेरे बहुत थे। अत: आर्थिक सम्पन्न लोगों को सदा भय रहता था कि न जाने कब कोई धाड़ (डाका) पड़े या कब कोई चोर आकर चोरी कर जाए।

कात्याल ने देखा कि तबेले की दीवार में छेद कर चोर घोड़ी को चोरने के लिये भीतर आ रहा है। तलवार का एक झटका और चोर का सिर धड़ से अलग। बाहर खड़े सहायक तीन चोर भागने वाले ही थे कि कात्याल ने तीनों को काट मारा। एक साथ चार मुर्दे इकट्ठे करके घुड़साल के एक कोने में रख दिया। जैसे कुछ हुआ ही नहीं, ऐसा मानकर कात्याल फिर से गहरी नींद में सो गया। ***क्रूर कर्म करके भी जो गहराई से सो जाय और पुण्य कर्म करके भी जिसकी नींद हराम हो जाय, वह भिन्न-भिन्न मानसिकता का ही प्रभाव माना जाता है।***

संसार में कई प्रकार की चोरियाँ होती हैं। उसमें एक यश चोरी भी है। साहूकार (सशक्त) दिखने वाले लोग भी कई बार और किसी का यश चोर लेते हैं। यशस्वी काम और कोई करे पर दूसरे चालाक-लुच्चे लोग उस यश को अपने नाम पर चढा देते हैं। इसको यश चोरी कहते हैं। काव्य, कला व साहित्य के क्षेत्र में ऐसी चोरी बहुत होती है।

कात्याल ने चारों चोरों को मार दिया पर उसका यश दूसरे सेवकों ने अपने नाम पर कर लिया। ***कोई किसी की तोहमत नहीं लेगा मगर यश ले लेगा। दूसरों की तोहमत अपने सिर पर ले ले और अपना यश दूसरों के नाम पर कर दे, उससे बड़ा और कोई संत नहीं कहलाता।***

कात्याल के भोलेपन का नापाक फायदा लेकर दूसरे साधारण नौकर ठाकुर माणशिया के सामने उपस्थित हो गए। कात्याल तो भैंसें लेकर उन्हें चराने को चला गया था। उसको इनाम से कोई सरोकार नहीं था। ***इनाम-लालची लोग इनाम पाने के लिये कैसा भी झूठ बोल सकते हैं।*** शाम को जब कात्याल लौटा तब उसको घायल हुआ देखा। पूछने पर सच्चाई बाहर आई कि चोरों को मारने वाला तो वही था। ***सच्चाई लम्बे समय तक छिपती नहीं है। झूठ का भी यही सिद्धान्त है। समय आने पर सत्य पुकार के बोल उठता है। आपा ने कात्याल की कदर की। तरक्की दी और अपने अंग रक्षक के रूप में उसको रख लिया। कार्यकुशलता की कदर स्वरूप मिली तरक्की ही सच्ची तरक्की है। धक्का देकर, रिश्वत या सिफारिश से तरक्की पाए लोग सच्चे मोती नहीं होते। समय आने पर वे फूट***

जाते हैं। सच्चे मोती ही लुहार की चोट सह सकते हैं, फरकिया मोती नहीं।

* * *

दाम्पत्य जीवन में कई अनिष्ट आते रहते हैं। उनमें सबसे बुरा व बड़ा अनिष्ट व्यभिचार है। पति या पत्नी एक दूसरे के जीवित रहते पर-पुरुष या पर-स्त्री से यौन सम्बन्ध रखे तो वह व्यभिचार कहलाता है। उसके अति भयंकर परिणाम आते हैं। अत: उसको सभी धर्मों में महापाप माना गया है।

चाचई गाँव में कोली लोगों की आबादी बहुत थी। एक कोई कोली रोटी कमाने के लिये गामान्तर गया हुआ था। घर में पत्नी अकेली थी। ***स्वर्ण बिना निगरानी के चाहे रखें पर पत्नी को कभी भी नहीं। बिना देखभाल वाले खेत की फसल भटकते पशु खा जाते हैं। उसी तरह बिना निगरानी की स्त्री कब फंस जायेगी, कहा नहीं जाता। दाम्पत्य जीवन की सफलता का मूलाधार विश्वास है। मगर विश्वास को भी बाड़ की आवश्यकता रहती है। बिना बाड़ का विश्वास बहुत भरोसा पात्र नहीं रहता।***

कोली की अनुपस्थिति में अकेली युवा स्त्री पर दूसरे एक कोली की कुदृष्टि पड़ी। प्रत्येक गाँव में ऐसे नजर-लुच्चे लोग होते ही हैं। स्त्री को वह नजर अच्छी लगी, क्योंकि यौवन था। काम-भूख लगती ही है। काम भोग चुकी हुई महिला लम्बे समय तक काम-भूख सह नहीं सकती। कईबार वह खुद काम शिकारी को ढूंढती रहती है। कामी और कामिनी दोनों एक हो गए। गले तक डूब गए। पति-पत्नी के प्रेम से व्यभिचार का प्रेम अधिक तीव्र होता है। पति-पत्नी को यदि समाज का डर न हो तो अलग किया जाता है। मगर व्यभिचारी प्रेमियों को समाज प्रयत्न करे, फिर भी अलग नहीं कर सकता। शायद तन से अलग किया जाए पर मन से अलग किया नहीं जा सकता।

वह पति वापस आए, उससे पहले दोनों प्रेमी भग गए। मगर प्रश्न था राज मान्यता का। जो शादी राज स्वीकृत, समाज स्वीकृत या धर्म स्वीकृत नहीं होती, उसको लोग स्वीकार नहीं करते। बिना लोग स्वीकृति समाज में रहना कठिन होता है। अत: लोग-स्वीकृति शादी में आवश्यक है। प्रेमी कोली ने चाचई ठाकुर को दो भैंसे भेंट में दे दी और ठाकुर का मन जीत लिया। जिसका मन लोभ-लालच से जीता जाता है, वह सही न्याय नहीं दे सकता। ठाकुर ने उस कोली के व्यभिचार-सम्बन्ध से आँख मूंद ली।

थोड़े दिनों के बाद मूल कोली धन कमाकर पत्नी के लिये कपड़े व गहने लेकर लौटा। मगर पत्नी के विश्वासघात का समाचार सुनकर उसे गहरी चोट लगी। ***सभी चोटों में स्त्री की चोट सबसे गहरी होती है। स्त्री की चोट से लोग खून-खराबा कर देते हैं। जो स्त्री वासनाग्रस्त जीवन जीती है, वह विश्वसनीय नहीं होती। वह चंचल होती है। चंचलता एकनिष्ठ नहीं होती। बहुनिष्ठ वासना विनाशक बन जाती है। इसीलिए स्त्री का पतिव्रत धर्म पूजा आता है। पतिव्रत धर्म उसको एकनिष्ठ बने रहने की शक्ति प्रदान करता है। बिना ऐसी शक्ति वासना की आंधी में टिके रहना असंभव-सा होता है। सभी आंधियों में वासना की आँधी सबसे प्रबल व विनाशक होती है। बिना धर्म के उसमें टिका रहा नहीं जाता।***

पति कोली ठाकुर के पास शिकायत करने गया। मगर बिके हुए ठाकुर ने कोई न्याय नहीं किया। इतना और कहा-'दूसरी कोली स्त्री ले आना, स्त्रियों की कहाँ कमी है।' इस उत्तर से कोली बिगड़ बैठा। जाते-जाते कहा-'ठाकुर! भैंसों का दूध खट्टा करके रखूंगा।' कोली बागी बना। चारों तरफ तोबा-तोबा मचा दिया। ***अन्याय से अत्याचार और अत्याचार से विद्रोह जन्मता है।*** विद्रोह में कोली ऐसा डूबा कि वह भी भटक गया। ठाकुर के पीछे तो था ही। एक रात को कोली ने आकर ठाकुर पर गोली दागी। मगर ठाकुर बच गये क्योंकि वह दूसरी जगह सो रहे थे।

(शेष पृष्ठ 34 पर)

प्रभु से अपनापन

– रश्मि रामदेरिया

ईश्वर अंस जीव अबिनासी।
चेतन अमल सहज सुख रासी।।

तात्पर्य है कि हमारा सम्बन्ध शरीर-संसार के साथ नहीं है, प्रत्युत भगवान् का अंश होने से हमारा सम्बन्ध भगवान के साथ ही है। हमारे से भूल यह हुई है कि हमने अपने को संसार का और संसार को अपना मान लिया अर्थात् शरीर-संसार के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ लिया।

वास्तव में मनुष्य शरीर कर्मयोनि अथवा भोगयोनि नहीं है, प्रत्युत साधनयोनि अथवा प्रेमयोनि है; क्योंकि भगवान ने मनुष्य को प्रेम के लिये ही बनाया है-***एकाकी न रमते।*** इसलिए प्रेम की प्राप्ति मुनष्य जन्म में ही हो सकती है। संपूर्ण योनियों में एक मनुष्य ही ऐसा है, जो भगवान को अपना मान सकता है। जैसे छोटा बालक कहता है कि माँ मेरी है। उससे कोई पूछे कि माँ तेरी क्यों है, तो इसका उत्तर उसके पास नहीं है। उसके मन में यह शंका ही पैदा नहीं होती कि माँ मेरी क्यों है? माँ मेरी है, बस, इसमें उसको कोई संदेह नहीं होता। इसी तरह हम भी संदेह नहीं करें और यह बात दृढ़ता से मान लें कि प्रभु हमारे, सिर्फ हमारे हैं। वे कोई भी रूप धारण करें, हैं तो प्रभु ही। वे चाहे किसी भी रूप में आयें, उनकी मरजी है।

जो अब तक सोते हैं उनको भी उठाना।
तकदीर पै पुरुषार्थ का डंका बजाना।
इंसान झुके, भगवान को रुकना ही पड़ेगा।।
अब उठ मेरे मनवा तुम्हें उठना ही पड़ेगा।

केवल एक प्रभु मेरे हैं-इससे बढकर न यज्ञ है न तप है, न दान है, न तीर्थ है, न विद्या है, न कोई बढ़िया बात है। भगवान के सिवाय किसी से स्वप्न में भी मतलब नहीं। किसी की गुलामी करने की जरूरत नहीं है। हमें कहीं जाने से जो परमात्मा मिलेंगे, वे ही परमात्मा जहाँ हम हैं, वहाँ पूरे-के-पूरे हैं। कहीं जाने की कुछ बदलने की जरूरत नहीं है। केवल मन बदलने चाहिये। उनकी प्राप्ति केवल इच्छा मात्र से होती है। जो वस्तु दूर हो उसकी प्राप्ति के लिये मार्ग होता है। जो वस्तु सर्वव्यापक हो, सब जगह परिपूर्ण हो उसकी प्राप्ति के लिये मार्ग नहीं होता। उसकी प्राप्ति केवल चाहने से होती है। हम दिन भर में जो भी कार्य करें प्रभु का नाम जप हमारे मन में सदा के लिये चलता रहे। कलयुग में नाम जप से बढ़कर कुछ नहीं। प्रेम से प्रभु का नाम जप करते रहना चाहिये। महात्मा श्री भूरी बाई 'अलख' की भजनावली की कुछ पंक्तियों में कहा गया-

पाप पुण्य भुगतन को आयो;
कौन तेरा अरु तू किसका रे।
जब लग जीवे हरि गुण गा ले;
धन जीवन सपना निसि कारे।।
पीले रे प्याला हो मतवाला,
प्याला प्रेम हरि रस का रे।

सर्वोपरि ईश्वर को खोजने की इच्छाशक्ति को अधिकाधिक बलवान बनाते जाएँ, चाहे कितनी भी बाधाएँ क्यों न आए। तभी हम जीवन में विजयी होंगे। हमें जब भी समय मिले प्रभु से यही प्रार्थना करनी चाहिये-''जो कुछ मेरे साथ होगा मैं उसे स्वीकार करूंगा/करूंगी। लोग मेरे बारे में क्या सोचते हैं मुझे उसकी परवाह नहीं क्योंकि आज वे मेरे साथ हैं; कल मेरे विरोध में हो जाते हैं। आपकी प्रसन्नता और आपके आश्वासन में ही मेरी संतुष्टि है।''

प्रत्येक माया (समस्याएँ) परीक्षा है हमारे लिये। प्रभु का आशीर्वाद है वही ईश्वर के समीप लाता है। अत: हमें यह ध्यान रखना होगा कि हम जो कुछ भी करें, केवल ईश्वर के लिये ही करें। दूसरों का ध्यान रखने का और उनके प्रति अच्छाई करने का प्रयास तब तक करते रहें जब तक हम एक सुन्दर फूल नहीं बन जाएँ जिसे हर कोई देखना चाहता है। कण-कण में प्रभु

हैं। सबको प्रसन्न व उनका ध्यान रखना प्रभु की ही सेवा है। विनम्र बनें। शान्त रहें। चाहे जो भी हो; उससे चिन्तित या विचलित कभी न हों।

सपना-सा हो जावसी सुत कुटुम्ब धन धाम,
हो सचेत बलदेव नींद से, जप ईश्वर का नाम।
मनुष्य तन फिर फिर नहिं होई,
किया शुभ कर्म नहीं कोई,
उम्र सब गफलत में खोई।

हम आज से, इसी समय से प्रण लें और प्रभु के होकर रहें। कोई क्या कर रहा है, भगवान जानें। हमें मतलब नहीं है। सब संसार नाराज हो जाये तो परवाह नहीं, पर प्रभु मेरे हैं-इस बात को भूलें नहीं, छोड़ें नहीं। अन्त में सब छोड़ देंगे, कोई हमारे नहीं रहेंगे तो फिर पहले से ही छोड़ दें हम, इसमें हमारी भलाई है। हम निराकार रूप से हैं, पर शरीर रूप से अपने को साकार मानते हैं। यह मूल भूल है। प्रभु को हम देख सकते हैं। उनके तीन स्वरूप हैं। एक उनका मूल (आदि) व्यक्तिगत स्वरूप। दूसरा हमारे हृदय में स्थानीय रूप से स्थित है जो हमें (हमारी चेतना) को निर्देश देते हैं तथा तीसरा उनका सर्वव्यापी स्वरूप जो सृष्टि के कण-कण में व्याप्त है।

"It's more profitable to be an attentive listener than it's to be a fluent talker"

जितना हो सके चुप रहकर ज्यादा सुनें। हमारा अस्तित्व केवल इसलिए है कि हम परम प्रभु के साथ अपने प्रेम भरे सम्बन्ध का आनन्द लें।

मस्त जिन्दगी में है नई हिलोर आई।
अन्धकार को भगा प्रेम किरण आई।।

हम लोग प्रभु अथवा श्रीकृष्ण/रामजी के लघु नमूने हैं; इसलिए हमारे शरीर के भीतर अचिंत्य, यौगिक शक्ति है; किन्तु बहुत अल्प मात्रा में वह विद्यमान है। जिसने प्रभु को अपना लिया, उनके प्रति प्रेम उत्पन्न कर लिया है; वह चौबीसों घंटे अहर्निश अपने हृदय के भीतर प्रभु का दर्शन कर सकते हैं।

पृष्ठ 14 का शेष

विचार-सरिता

ॐ समानी वः आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।

विचारों में जो टकराव होता है उसका हेतु पंथ या सम्प्रदाय है। विचारों में यदि संतुलन है तो कहीं भी टकराव की कोई गुंजाइश ही नहीं है। वैचारिक विविधताओं के कारण ही टकराव, धोखा, क्रूरता आदि की सम्भावना है। इसलिए हम सद्विचारों का महत्त्व समझते हुए सद्विचारों की प्रमुखता रखें ताकि हम सद्गामी बनकर राष्ट्रहित में कार्य कर सकें।

हमारे विचारों के स्रोत हमारे माता, पिता, मित्र, आचार्य व टी.वी., अखबार, साहित्य आदि हैं। हम जिनके सान्निध्य में जितना अधिक रहना पसन्द करेंगे वैसे ही विचार हमारे जीवन में उतरेंगे और विचारों के अनुरूप ही हमारी जीवनशैली बन जावेगी। ज्ञान, जानकारी, अभ्यास आदि भी हमारे विचारों के स्रोत हैं। अतः हम साधकों को चाहिये कि हम सदैव अपनों से श्रेष्ठजनों का सान्निध्य पाने का प्रयास करें ताकि हमारे विचार शुद्ध व सात्विक बन सकें। जैसे हमारे विचार होंगे वैसी ही हमारी क्रिया होगी और जैसी हमारी क्रिया होगी वैसे ही विचार पैदा होंगे।

विचारों की उत्पत्ति होती है अतीत के संस्कारों से और संस्कारों की उत्पत्ति होती है वर्तमान के विचारों से। अतः हमारे विचार सदैव शुद्ध व सात्विक व तात्विक कैसे बने रहें, इसकी सावधानी आवश्यक है। मूलभूत सिद्धान्तों पर हम सबको समान विचारधारा अपनाकर एकता का भाव संजोना चाहिये तकि व्यवहार सुन्दर व सुखद बन सके। हमारी महान संस्कृति का हेतु हमारी विचारधारा ही थी। वर्तमान में भी इसकी आवश्यकता है और भविष्य में भी रहेगी। उचित व अनुचित का सम्यक विचार करते हुए सदैव सत्य का साथ देवें ताकि सत्य की जीत हो सके और असत्य अनाचार, भ्रष्टाचार, व्यभिचार आदि का बोलबाला ही समाप्त हो जाय।

सत्यम्! शिवम्!! सुन्दरम्!!!

पदमणी पच्चीसी

– मदनसिंह सोलंकिया तला (शेरगढ़)

सतवाळी चित्तौड़ री, ममताळी महमाय।
पतवाळी माँ पदमणी, पूजूं थांरा पाय।।

भळकी भळभळ भारती, रळकी रीतां रांण।
पळकी पदमण प्रीतड़ी, जळगी जौहर जांण।।

सतवंती पदमण सिरै, मतवंती थूं माय।
धजवंती सत धारियौ, लजवंती बण लाय।।

रजवट ऊजळ राखियौ, कुळवट राखण कांण।
धजवट पदमण धारणी, सतवट राखण रांण।।

पदमण गंगा पूजती, रे! अर धंगा रांण।
सतियां संगा चालणौ, जौहर जंगां जांण।।

रजपूतण भळ राखियौ, नवखंड ऊजळ नांव।
जोतां अजलग जगमगै, पूजूं पदमण पांव।।

कुळ री राखण कीरती, अंजस राखण आंण।
नमन हजारों नारियां, जौहर कीधो जांण।।

पूगळ गढ़ री पदमणी, भेदपाट कुळ माळ।
सोळै सहस सतवतियां, जळगी जौहर ज्वाळ।।

हरवळ निज तन होमियौ, सतवंती सिरमौड़।
अमर सदा इळ ऊपरां, चावौ गढ़ चित्तौड़।।

अंजस राखण आबरू, भरियौ हिरदै भाव।
पतिव्रता पण पाळियौ, पूजूं पदमण पांव।।

परम नमूं पदमावती, वंदन करूं विसेस।
सतवंती सत धारियौ, दीपै रजवट देस।।

पदमण भळ प्रकासियौ, बापा रावळ वंश।
राणी आ रतनेस री, अंजसै सूरज अंश।।

उमा संग शिव आविया, देखण सती दरसाव।
जगमग जागी जोतड़ी, पूजूं पदमण पांव।।

पावन कीधो पदमणी, कुळवट जौहर कुंड।
भाठों माथौ भांगियौ, खिलजी वाळै झुंड।।

दीसै पग पग देवळै, सतियां तणौ संदेस।
पदमणियाँ परताप सूं, दूणौ तपै दिनेस।।

गौरा बादळ गरजिया, बढ़ चढ़ कीधा वार।
झुंड अरियां झाड़िया, जुध हूवा जूंझार।।

रंगिया मगरा रगत सूं, राखी रजवट रीत।
अखियाता रहसी अमर, गौरा बादळ गीत।।

साको कीधो सूरमों, अंतस कियौ उफांण।
रगतां राती रेणका, अजर अमर अहनांण।।

पावन कीधो पदमणी, मेदपाट सिरमौड़।
जौहर जोतां जगमगै, ठावी रजवट ठौड़।।

पूगळ हन्दी पदमणी, चित्रकूट री शान।
जौहर मेळौ जोयलौ, सतियां रौ सम्मान।।

चावै गढ़ चित्तौड़ री, करै न समवड़ कोय।
जस औ जुगां न जावसी, जौहर मेळौ जोय।।

रजवट रौ पण राखियौ, उर में राख उमाव।
दीपै अजलग देस में, पूजूं पदमण पांव।।

पग पग पदमण प्रीत भल, रग रग पदमण रीत।
जगमग पदमण जोत अर, नग नग पदमण नीत।।

पदमण कीधी पाळणा, अडिग रांणी अभंग।
जौहर निज तन जाळियौ, रजपूतण नै रंग।।

माटी धर मेवाड़ री, अेक लिंग री आस।
आखे भारत आजलग, पदमण तणौ प्रकास।।

*

महलों में जौहर धधका हर राजपूत परवाना था।
हर-हर महादेव नारों से अवनी अम्बर गूँजा था।।

ओरछा के राजा राम

– स्वामी गोपाल आनन्द बाबा

बुन्देलखंड के बुन्देलों की गौरवगाथा का साक्षी है 'ओरछा'। यहाँ के शासक आज भी हैं प्रभु श्री रामचन्द्र यानी राजा राम (रघुवंशी राम)। भारत में रियासती-राजतंत्रीय राज भले ही 26 जनवरी, 1950 से पूर्व ही समाप्त होकर लोकतंत्रीय राज स्थापित हो गया परन्तु ओरछा एकमात्र वह स्थान है जहाँ 'राम' देवता अथवा भगवान के रूप में नहीं पूजे जाते बल्कि वे एक राजा के रूप में वहाँ विराजमान हैं। ओरछा में आज भी राजशाही परम्पराओं के अनुरूप राजा श्रीराम सरकार की सत्ता का सांकेतिक निर्वहन किया जाता है।

ओरछा में राम राजा की दिनचर्या एक राजा की तरह शुरू होती है। प्रात:काल मंजन-दतवन, स्नान होता है, दोपहर में कलेवा-राजभोग और रात्रि में बयालु (रात्रि भोजन) होती है। राम राजा के थाल में 56 प्रकार के व्यंजन परोसे जाते हैं। इन विविध व्यंजनों को मंदिर की पाकशाला में बनाया जाता है। उन्हें अर्पित किए गये महाप्रसाद में पान बीड़ा और लड्डू भी होता है। प्रभु श्री राम के वस्त्र व आभूषण प्रतिदिन बदले जाते हैं। सबसे अनूठी बात यह है कि रामराजा सरकार को प्रतिदिन दिन में पांच बार (पांचों पहर) सशस्त्र सैनिकों (पुलिस गार्डों) द्वारा 'गार्ड ऑफ ऑनर' (प्रतिष्ठा सलामी) दी जाती है। यह ब्रिटिश हुकूमत काल में राजशाही-शासक द्वारा व्यवस्था की जाती थी क्योंकि यहाँ के वास्तविक राजा राम थे और उनकी अनुमति से ओरछा नरेश शासन चलाते थे; आजादी के बाद जिलाधीश/उपायुक्त के जिम्मे यह व्यवस्था है। इसके लिये मंदिर के प्रवेश द्वार पर 11 पुलिस के जवान तैनात रहते हैं। इनमें एक प्लाटून कमांडर, दो प्रधान आरक्षक व 8 आरक्षक शामिल रहते हैं।

मंदिर में राजा राम सिंहासन पर ढाल-तलवार लिए बैठे हैं। शेष स्थान पर वे धनुर्धर हैं। यहीं पर राम बैठे हुए हैं जबकि अन्य मंदिरों में खड़े स्वरूप में दृष्टिगोचर होते हैं। यहाँ भगवान राम बैठे हैं परन्तु हनुमान खड़े हैं। अन्य स्थान पर इसके विपरीत है। सामान्यत: किसी भी मंदिर में प्रतिमा की प्राण प्रतिष्ठा होने के बाद मूर्ति अपने स्थान पर स्थिर होती है। यहाँ पर वर्ष में कई बार मूर्ति गर्भगृह से बाहर आती है। मंदिर का समय भी सामान्य मंदिरों की तरह न होकर एक राजा के राजमहल की दिनचर्या के अनुरूप है। एक बार भारत की तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी यहाँ राजा राम के दर्शन करने के लिये आई थी, पर रात्रि के आठ बजे के बाद पहुँचने के कारण दर्शन से वंचित रही, क्योंकि मंदिर के कपाट उनके लिये भी नहीं खुले।

राम राजा के अधीन मंदिर प्रशासन है और मंदिर प्रशासन के अधीन राम राजा। मंदिर न्यास के पदेन अध्यक्ष टीकमगढ के जिलाधीश हैं। मंदिर परिसर में श्रीराम अपने सभासदों के साथ विराजते हैं। राजा की मूर्ति के साथ माता सीता, लक्ष्मण, सुग्रीव, जामवन्त, अंगद और नृसिंह विराजमान हैं। वस्तुत: महाराज मधुकर शाह भगवान नृसिंह के उपासक थे, इसलिये उनकी प्रतिमा भी वहाँ रखी गई है।

सभी शुभ कार्य-जैसे विवाह संस्कार, मुण्डन संस्कार राम राजा के सान्निध्य में ओरछा आकर सम्पन्न किए जाते हैं। सम्पत्ति व वाहन क्रय करने पर पूजन, प्रतिष्ठान का शुभारम्भ आदि करने से पहले राम राजा सरकार से उसके सफल होने की मनौती मांगी जाती है। यहाँ मंदिर के भीतर बेल्ट पहनकर जाना प्रतिबंधित है। क्योंकि माना जाता है कि इससे राजा की अवमानना होती है।

इतिहासकारों का कथन है कि पूरा बुन्देलखण्ड धर्म, संस्कृति का पोषक रहा है और यहाँ विराजे श्री राम राजा सरकार के प्रति लोगों की अटूट आस्था भी इसका अभिन्न अंग है। यह अवस्था समय के साथ और भी सशक्त होती जा रही है। भारत में रामराज्य स्थापित करने की जो परिकल्पना की जाती है, वह ओरछा में साक्षात परिपूर्ण होती है।

स्थानीय लोगों के लिये राम राजा ही अन्नदाता हैं। माना जाता है कि ओरछा में कोई भूखा नहीं सोता।

ओरछा के राजमहल परिसर में श्री राम राजा सरकार का मंदिर है, तो मुगल जहांगीर का महल भी है, जिसकी स्थापत्य कला अनूठी है। ओरछा हिन्दुस्तान की संस्कृतियों को सहेजता है। भारत में अयोध्या के कनक मंदिर के बाद ओरछा में ही राम का भव्य मंदिर है, परन्तु यहाँ आज भी वे (राम) शासक-राजा हैं। बुन्देले कहते हैं।-

'प्रभु राजा राम के दो निवास हैं खास।
दिवस ओरछा रहत है, रात अयोध्या वास।।'

ओरछा बेतवा नदी के तट पर बसा वर्तमान टिकमगढ जिले का भाग है, जो वर्तमान मध्यप्रदेश अन्तर्गत है और झांसी (उ.प्र.) से 18 कि.मी. ही दूर है। श्री रामनवमी, श्रावण तीज, विवाह पंचमी (अगहन शुक्ल पंचमी, श्रीराम विवाह उत्सव) तथा नववर्ष के दिन यहाँ श्रद्धालु भक्तों की संख्या पचास हजार तक पहुँचती है, परन्तु लोगों व प्रशासन की मानें तो श्रीरामलला सरकार के विशेष पर्वों पर श्रद्धालुओं की संख्या 80 हजार से 1 लाख तक पहुँच जाती है। ऐसे समयों पर सुरक्षा के लिये सागर रेंज से 500 जवान अतिरिक्त बुलाने पड़ते हैं। विदेशी मेहमानों की भी ओरछा पसंदीदा जगह है। ओरछा से मात्र 50 कि.मी. दूर है दतिया जिसे लघुवृन्दावन माना जाता है, यहाँ 200 से अधिक मंदिर हैं, स्थापत्य कला वृन्दावन के मंदिरों से प्रभावित है। ओरछा राजमहल के समीप स्थित विशाल चतुर्भुज मंदिर चार भुजाधारी भगवान विष्णु को समर्पित है जो ओरछा का एक प्रमुख आकर्षण है। लक्ष्मीनारायण मंदिर ओरछा के पश्चिम में एक पहाड़ी पर स्थित है जो चटकीले रंगों में भित्तिचित्रों का जादू बिखेर रहा है। ओरछा ग्वालियर से 120 कि.मी. और खजुराहो 180 कि.मी. दूर है।

पक्षी प्रेमियों के लिये ओरछा वन्य जीव विहार स्वर्ग जैसा है, यहाँ लगभग 200 प्रजाति के पक्षियों का डेरा रहता है। मध्यप्रदेश टूरिज्म कार्पोरेशन राज्य में केवल तीन जगह 'लाइट साउण्ड' कराता है, इसमें ग्वालियर और खजुराहो के बाद ओरछा शामिल है। यह शो ओरछा किले में स्थित होटल शीशमहल में आयोजित किया जाता है। ओरछा नगर की स्थापना सन् 1531 ई. में राज रूद्रप्रताप (1501-1531 ई.) ने की थी। यहाँ के महाकवि केशवदास राजावीरसिंह जूदेव के राज कवि थे। ओरछा में स्वतंत्रता सेनानी चन्द्रशेखर आजाद का अमर शहीद स्मारक भी दर्शनीय है। (ओरछा महाराज द्वारा निर्मित नेपाल के जनकपुर अवस्थित श्रीरामजानकी मंदिर विशाल व आकर्षक है।)

ओरछा में बेतवा नदी के किनारे-किनारे कंचन घाट पर चौदह छतरियाँ बनी हुई हैं, जो यहाँ के शासकों की स्मृति में बनवाए गये स्मारक हैं, इन्हें शाही स्मारक भी कहा जाता है। ये अनोखा जादुई आकर्षण पैदा करती हैं। ये सब ईस्वी की 17वीं व 18वीं सदी में बनाई गई हैं। बेतवा पर बने एक संकरे पुल से सूर्यास्त के समय इन छतरियों का प्रतिबिम्ब नदी में देखते ही बनता है, पुल से ये अधिक सुन्दर दिखते हैं। बेतवा नदी कई स्थानों पर गहरी भी है।

ओरछा का जहांगीर महल स्थापत्य कला का शानदार नमूना है। यह ओरछा के प्रतापी राजा वीरसिंह देव और बादशाह जहांगीर की दोस्ती की मिसाल पेश करता है। जहांगीर के बुन्देलखण्ड प्रवास पर उसके स्वागत के लिये दतिया में 'सतखण्डा महल' और ओरछा में जहाँगीर महल का निर्माण उन्होंने कराया था। महाराज के जीवनकाल में जहांगीर इस महल में कभी नहीं ठहर सका। जहांगीर महल के अधिक ऊँचाई पर होने के कारण वहाँ से ओरछा का पूर्ण दर्शन हो जाता है। महल का प्रवेश द्वार पूरब की ओर था, परन्तु बहुत बाद में पश्चिम की ओर से एक और प्रवेश द्वार बनवाया गया। वर्तमान में पूरब का द्वार बन्द रहता है। पश्चिम वाला द्वार यात्रियों के लिये खोला गया है। ओरछा के भव्य किले का निर्माण वीरसिंह जूदेव ने किया था। जहांगीर महल, शीशमहल, राजा राम मंदिर और राजमहल इसी किले में बने हुए हैं। यह किला कला एवं वास्तुकला का बेजोड़ मिश्रण है। शीशमहल वास्तुकला का उत्कृष्ट उदाहरण है। यह मध्यप्रदेश पर्यटन निगम के अधीन है, जिसने इसका पुनरुद्धार करके जीवन्त बना दिया है।

राजमहल के समीप स्थित विशाल चतुर्भुज मंदिर का निर्माण सन् 1558-1573 ई. के बीच राजा मधुकरसिंह जूदेव ने करवाया था। मंदिर में प्रार्थना के लिये एक

विशाल कक्ष है जहाँ भगवान विष्णु व भगवान श्रीकृष्ण के भक्त एकत्रित होते हैं। यह मंदिर एक विशाल चबूतरे पर निर्मित है। मंदिर के मुख्य तल तक पहुँचने के लिये 50 से अधिक सीढियाँ चढनी पड़ती हैं। अपने समय की यह उत्कृष्ट रचना यूरोपीय कैथेड्रल के समान है। यह मंदिर नागर शैली में बना है। इसमें तीन शिखर हैं। द्वितीय चरण में महाराजा वीरसिंह जूदेव ने इसमें ईंट और चूने का प्रयोग करवाया। यह बुन्देल-स्थापत्य शैली का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है। अलग-अलग कालखण्डों में बनने के कारण यह मंदिर जटिल संरचना वाला है और दुर्ग एवं राजमहल की अनूठी वास्तुकला विशेषताओं से युक्त है। ओरछा नगर की एक कि.मी. की परिधि में कई प्राचीन भवन संरचना हैं जो देख रेख के अभाव में वर्ष पर वर्ष व्यतीत होने के कारण जीर्ण-शीर्ण हो रही हैं। इनमें प्राचीन टक्साल भी है जो चतुर्भुज मंदिर के पास ही स्थित है।

लक्ष्मीनारायण मंदिर सन् 1622 ई. में महाराजा वीरसिंह जूदेव द्वारा बनवाया गया था। यह ओरछा के पश्चिम में एक पहाड़ी पर स्थित है। मंदिर में 17वीं से लेकर 19वीं शताब्दी तक के भित्ति-चित्र बने हैं। यहाँ चटकीले रंगों में भित्ति-चित्रों का जादू मनमोहक है। चित्रों के चटकीले रंग इतने जीवन्त लगते हैं जैसे कुछ ही दिन पहले बने हों। मंदिर में झांसी की लड़ाई के दृश्य और भगवान श्रीकृष्ण की आकृतियाँ भी बनी हुई हैं। इन भित्ति-चित्रों के कारण यह मंदिर विश्व प्रसिद्ध है।

मध्यप्रदेश टूरिज्म डेवलपमेन्ट कॉर्पोरेशन बतवा नदी के किनारे अपना एक होटल 'बेतवा रिट्रीट' के नाम से संचालित करता है। यही रिजोर्ट बेतवा नदी में 3.5 कि.मी. लम्बे क्षेत्र में 'वाटर राफ्टिंग' की व्यवस्था करता है। पठारी नदी होने के कारण बेतवा में पत्थर बहुत हैं, इसलिए पानी का बहाव ऊपर-नीचे होता रहता है। इसमें लहरें भी तीव्र होती हैं। राफ्टिंग का आनन्द उठाने के लिये यह उपयुक्त स्थान है। नदी के दूसरी ओर घने वन भी यात्रियों के लिये आकर्षण केन्द्र हैं। ओरछा में क्याकिंग भी होती है, जिसे एक प्राइवेट एजेन्सी द्वारा संचालित किया जाता है।

वास्तव में मध्यप्रदेश के इस इलाके में भारतीय सांस्कृतिक परम्परा की अमिट निशानियाँ हर तरफ बिखरी हैं। यहाँ महलों, हवेलियों व मंदिरों की दरो-दीवारों से वीर बुन्देलों की शौर्यपूर्ण कहानियाँ झांकती हैं, उनकी वीर गाथा बोलती प्रतीत होती है।

बेतवा नदी के किनारे छतरियाँ अपने समय की समृद्धता की याद दिलाती है, उत्तर-मध्य युग के पुन: जीवित हो जाने की स्मृति तेज करती हैं। बेतवा नदी के घाट पर 'पर्यटक चौकी' स्थापित है, जो पर्यटकों की गतिविधि पर नजर रखती है। घाटों को स्वच्छ तथा गहरे पानी में न उतरने की अपील जगह-जगह पर नगर पंचायत द्वारा लिखवाई गई है। पर्यटकों की बढती संख्या को देखते हुए पर्यटन विभाग द्वारा यहाँ दो होटल संचालित किए जाते हैं। एक दर्जन से अधिक निजी होटल भी हैं।

यहाँ कुछ गिने-चुने बाजार हैं। दो मुख्य बाजार हैं-फूल बाग बाजार और रामराजा मंदिर बाजार। इन बजारों में जरूरत के सभी सामान मिल जाते हैं। यहाँ पीतल की मूर्तियाँ लुभावनी हैं। टीकमगढ़ में बनी पीतल की ये मूर्तियाँ और यहाँ के अन्य सामान अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। यहाँ के शिल्पी कई बार राष्ट्रीय पुरस्कार भी जीत चुके हैं। बुन्देल खंडी जायका (स्वाद) के लिये भी ओरछा सही जगह है। भात, दाल, कढी, बड़ा-मंगौड़ा, कोंच काचरिया, बिजौरी, खाण्ड, घी, मिर्च का चूरण, पापड़ और आम का आचार सामान्यत: यहाँ के भोजन में सम्मिलित रहते हैं। गाँव में महुआ से बने मुरका, लटा, डुबरी और भुने चने से बने सत्तू तथा बेर से बना बिरचुन जैसा व्यंजन लोग चाय से खाते हैं। महेरी, लपसी, भीड़ा, घेंघुर, खींच आदि भी लोकप्रिय भोजन हैं। आंवले की कढी-भांवरिया भी लोकप्रिय है। बफौरी, ठोंमर, माण्डे, एरसे, करार, अदैनी मसेला भी प्रसिद्ध है। यहाँ अधिकांश व्यजनों में बेसन, मैदा और ज्वार के आटे का प्रयोग किया जाता है। गन्ने के रस में पकाई गई रसखीर भी यहाँ लोगों को बहुत पसन्द है। दतिया शक्तिपीठ पीताम्बर देवी के लिये प्रसिद्ध है। यहाँ के राजा विजय बहादुर ने 175 वर्ष पूर्व दतिया में अनेकों मंदिरों की स्थापना की थी तथा वार्षिक उत्सवों की परम्परा प्रारम्भ की थी। इस मिनी वृन्दावन का दर्शन भी भाव विभोर करता है।

बुद्धि और पुरुषार्थ का महत्त्व

– बलबीरसिंह

मनुष्य का भाग्य अपना काम करता है। परन्तु जिस प्रकार छाता लगाकर कड़ी धूप के ताप को कम किया जा सकता है, उसी प्रकार सम्यक बुद्धि और पुरुषार्थ के द्वारा भाग्य को नियंत्रित किया जा सकता है। इस संदर्भ में अंग्रेजी के प्रसिद्ध नाटककार शैक्सपियर का कथन मनन करने योग्य है-'तुम्हारी बुद्धि ही तुम्हारा गुरु है।' बिना गुरु के न ज्ञान मिलता है और न अंधकार में प्रकाश के दर्शन होते हैं। बुद्धि प्रेरणा का कार्य करती है और पुरुषार्थ कार्य सम्पन्न करता है।

इच्छाशक्ति और पुरुषार्थ मनुष्य को प्राप्त होने वाले बहुत बड़े वरदान हैं। भाग्य अथवा ईश्वरेच्छा व्यक्ति को जिन परिस्थितियों में डाल देती है, उनके मध्य वह अपने को विवश अनुभव न करके उन पर विजय प्राप्त करना चाहे, यह इच्छाशक्ति की प्रेरणा मानी जानी चाहिए। हम परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करने के लिये प्रयत्न करें, संघर्ष करें यह पुरुषार्थी का लक्षण है। हम यदि इच्छा और पुरुषार्थ द्वारा जीवन को ढालने का प्रयत्न करेंगे तो अवश्य सफल होंगे। अतीत में जिन व्यक्तियों ने ऐसा किया है, वे महानता को प्राप्त हुए हैं और प्रतिकूल परिस्थितियाँ उनकी ओर देखती ही रह गई हैं, उनको रोक नहीं सकी हैं। तभी तो कहा है-'श्वान भूकते हैं खड़े, हाथी जाता है चला।'

लक्ष्य को पूरा करने के लिये अपनी समस्त शक्तियों द्वारा परिश्रम करना ही पुरुषार्थ है, ऐसा पतंजलि का कथन है। ऋग्वेद एक कदम आगे बढकर कहता है- 'देवता पुरुषार्थी से प्रेम करते हैं, आलसी से नहीं।' दैव का कोई भरोसा नहीं रहता अत: हमें निरंतर पुरुषार्थ करते रहना चाहिए। कहा है-जीवन का परम लक्ष्य परमार्थ है तथा जीवन की पूर्णता का प्रकाशन पुरुषार्थ के रूप में होता है।

हम किसी विषय को भली प्रकार समझने का प्रयत्न करें तब कर्तव्य-बुद्धि से पुरुषार्थ में प्रवृत हों तो सफलता अवश्य मिलती है। कर्तव्य बुद्धि से अभिप्राय है- कामना रहित, स्वार्थ रहित इच्छा। स्वार्थ-भावना बुद्धि पर परदा डाल देती है। तब हमारा पुरुषार्थ पुरुषार्थ न रहकर स्वार्थ-साधन का हेतु मात्र बनकर रह जाता है। विवेक युक्त एवं धर्म संगत व्यवहार का नाम पुरुषार्थ है। जैसी हमारी इच्छा होती है, तदनुरूप ही हमारा पुरुषार्थ होता है। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार-'पवित्र और दृढ इच्छा शक्ति सर्वशक्तिमान।'

संकट और कष्ट हमारी नियति नहीं हो सकते। वे केवल यह प्रदर्शित कर रहे हैं कि हमारी इच्छाशक्ति दुर्बल है और हम पुरुषार्थ करते हुए संकोच करते हैं। संकोच सिवाय बुद्धि की दुर्बलता के और कुछ भी नहीं है। केवल बुद्धि द्वारा ही मनुष्य का मनुष्यत्व प्रकट होता है। जिसके पास बुद्धि नहीं उसको शास्त्र से भी क्या लाभ है? यह वैसा ही है जैसा नेत्रहीन मनुष्य के लिये दर्पण बेकार है। दुर्बुद्धि हमें दुखों की ओर ले जाती है और सद्बुद्धि हमें दुख के मार्ग से विरत करती है तथा सुख प्राप्ति के मार्ग के प्रति प्रवृत करती है। जिस प्रकार देवगण जिसकी रक्षा करना चाहते हैं उसे उत्तम बुद्धि से युक्त कर देते हैं। उसी प्रकार वे जिसको संकट में डालना चाहते हैं उसको निकृष्ट बुद्धि से युक्त कर देते हैं। कहा भी है-

जाको प्रभु दारुण दुख दु:ख देही।
ता कि मत पहले हर लेही।।

चाणक्य का कथन है-'विनाश काले विपरीत बुद्धि' अर्थात् विनाश के समय में बुद्धि विपरीत हो जाती है। सब कुछ बुद्धि का ही खेल है। सद्बुद्धि सुख व दुर्बुद्धि दुख का हेतु बनती है-

जहाँ सुमति तहां सम्पत्ति नाना।
जहाँ कुमति वहाँ विपति विधाना।।

तभी कहा जाता है कि जो व्यक्ति सद्बुद्धि का वरण नहीं करता है, वह अपने दुर्भाग्य के लिये काल,

कर्म या ईश्वर को व्यर्थ ही दोष देता है। बुद्धिमान अथवा पंडितजन की एक मात्र पहचान सद्बुद्धि है। जिसकी लौकिक बुद्धि धर्म का अनुसरण करती है ओर जो भोग को छोड़कर पुरुषार्थ का ही वरण करता है, वही पंडित कहलाता है। अत: आवश्यकता यह है कि व्यक्ति इन्द्रीय भोग में अपने अर्जित सुकर्म फल को नष्ट न करे और पुरुषार्थ द्वारा अपने सुकर्म की पूंजी में वृद्धि करता रहे। इसीलिए कहा जाता है कि विवेकपूर्ण बुद्धि वाले पुरुष शक्ति के अनुसार काम करने की इच्छा रखते हैं और करते भी हैं।

बुद्धि सदैव पारमार्थिकता के प्रति उन्मुख रहनी चाहिए। स्वार्थबद्ध वृति अविवेक बन जाती है। बुद्धि की अनुसारी वृति पुरुषार्थ का लक्ष्य सदैव पारमार्थिक रहता है। परमात्मा, ब्रह्म आदि को पुरुष कहकर सम्बोधित किया जाता है। इस दृष्टि से भी पुरुषार्थ सदैव धर्म आधारित होता है। अर्थ और काम का भोग धर्म-बुद्धि द्वारा करना पुरुषार्थ का उद्देश्य माना जाता है। आचार्य विनोबा भावे ने कहा है-'आत्मा को मोक्ष पुरुषार्थ की आवश्यकता होती है, शरीर को काम पुरुषार्थ प्रिय है।' विवेकशील मनुष्य मोक्ष-पुरुषार्थ का सेवन करके बुद्धि की पारमार्थिकता को सार्थक करता है। जो ऐसा करता है वह बुद्धि और पुरुषार्थ के रहस्य को जानता है। पुरुषार्थी स्वर्ग लोक के सुख की कल्पना नहीं करता, पर वह पृथ्वी पर स्वर्ग के अवतरण हेतु प्रयत्न करता है। बुद्धि की अवधारणा वास्तविक जगत की अनुभूति को आधार बनाती है।

जिन्हें हम सफल, सिद्ध अथवा महान पुरुष कहते हैं, वे सब पुरुषार्थी रहे हैं। भगवान श्री राम ने वनवासी होकर भी अपने को कभी असहाय अनुभव नहीं किया था। सीता हरण सदृश संकट के अवसर पर भी उन्होंने यही कहा था-मेरा रामत्व तभी सार्थक होगा जब मैं जानकी अपहरणकर्ता का नाश कुल सहित कर दूंगा। यद्यपि खलनायक के रूप में रावण स्मरण किया जाता है, वह अपने क्षेत्र में सिरमौर भी था, विपरीततम स्थिति में पूरे आत्म विश्वास के साथ कहता है -

निज भुजबल मैं वैर बढावा।
देहउं उतर जो रिपु चढ आवा।।

पुरुषार्थ के अभाव में न श्री राम राम बन सकते थे और न रावण रावण पद का अधिकारी बन सकता था। भगवान शंकराचार्य ने ठीक ही कहा है कि पुरुषार्थहीन मनुष्य जीते जी मरा हुआ होता है। बन्धुओं! अपने बुद्धि-विवेक का स्मरण करके उठ बैठिए और पुरुषार्थ के पथ पर अग्रसर हो जाइए।

पृष्ठ 18 का शेष

भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन में राजपूतों का योगदान

डूंगजी को पुन: जोधपुर राजा को सौंप दिया। डूंगजी जन्मभर जोधपुर राज्य में नजरकैद रहे और जवाहरजी बीकानेर राजाओं के नजरकैद रहे।

बीकानेर से छूटने के बाद जवाहरजी पाटोदा आगए। यहाँ पौह सुदि नवमी वि. 1938 में उनका देहान्त हुआ।

अड़तीसै का शुक्ल पक्ष, मोह नवमी गुरुवार।
बरस गुन्नासी राज कर स्वर्ग सिधारे जुहार।।

इन दोनों शेखावतों के कार्यकलापों से राजस्थान का जनमानस प्रभावित हुआ था और जगह-जगह गाया जाने लगा।

जे कोई जणती राणिया, डूंग जिस्यो दीवाण।
तो इण हिन्दुस्तान में पळतो नहीं फिरंगाण।।

आज भी राजस्थान में इन दोनों का यशोगान भोपा जाति द्वारा बड़ी मनमोहक वाणी में गाया जाता है तथा जनता द्वारा बड़े चाव से सुना जाता है।

वास्तव में इन दोनों ने राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम की ज्योति को प्रज्वलित किया। डूंगजी-जवाहरजी के समकालीन सूरजमल राठौड़ ददरेवा (चुरू राज.) भी हिसार के पास अंग्रेज विरोधी कार्यों में रत थे। इस प्रकार यहाँ तो 1857 ई. के स्वतंत्रता संग्राम से पूर्व ही राजस्थान के राजपूतों ने अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष शुरू कर दिया था और इस प्रदेश में अंग्रेज विरोधी वातावरण तैयार कर दिया था।

(क्रमश:)

समता मूलक समाज की अवधारणा

– जैसू खानपुर

हम जब कहीं सामाजिक सम्मेलनों में एकत्रित होते हैं, समता की बात भी कही जाती है और अनेकों बार प्रयास भी होते रहे हैं। लेकिन यह स्पष्ट तौर पर पाया गया है कि समता की अपेक्षा विषमता अधिक फैली है। जाति, धर्म, सम्प्रदाय अथवा सांस्कृतिक विचार में किसी न किसी कारण से विषमता अपना रूप दिखा ही देती है। प्रयत्न बहुत हुये किन्तु विषमता का ही बोलबाला रहा है। क्या हमें यह बाहरी वातावरण से मिलती है या हमारे विचारों में ही घुली हुयी है?

इसमें सुधार के प्रयास होते रहे हैं। हम हमेशा बाहर की ओर झांककर समस्या का समाधान चाहते हैं, किन्तु हमें हमारे अन्दर भी झांकना होगा। विषमता का कारण हमारी मूर्च्छा और कुछ पुरानी मान्यताएँ हैं। गांवों का वातावरण भी अच्छा नहीं कहा जा सकता। हम रूढ़ीवादी विचारधारा को बल देने का प्रयास करते हुये उन लोगों को बराबरी का दर्जा देना नहीं चाहते जो हमेशा से दबे कुचले हैं। क्या स्वतंत्र भारत में आज यह स्थिति मान्य है? नहीं, ऐसे संस्कार मानवीय एकता को तोड़ने में सहायक हो रहे हैं।

समता विहीन स्वतंत्रता का कोई महत्त्व नहीं रह जाता। समता और स्वतंत्रता दोनों एक दूसरे से जुड़े हुये हैं। मानवीय समानता पर आज अधिक जोर देने की आवश्यकता है। आर्थिक समानता इसके बाद आती है। धन कमाने में व्यावसायिक बुद्धि के उपयोग से किसी को अधिक लाभ हो सकता है, किसी को कम लाभ हो सकता है। इससे मानवीय समानता की कड़ी नहीं टूटती यह तो तब टूटती है, जब एक मानव दूसरे मानव को अपने स्तर का नहीं मानता।

हमारी मान्यताओं ने इसमें बाधा उत्पन्न की है। हर पुरानी मान्यता को नकारा नहीं जा सकता लेकिन यदि वर्तमान में अच्छी बात कही जा रही है तो क्या पहले की बुरी बात को भुला देना अच्छी बात नहीं होगी? इन मान्यताओं ने सांस्कृतिक रुकावटें पैदा की हैं। इन पुरानी मान्यताओं के कारण ही विशाल भारत लघु भारत बना है। हमारी संकीर्ण मानसिकता का होना भी इसका एक कारण है। प्राणी मात्र से प्रेम रखने की अवधारणा रखने वाले समाज में स्थिति यह है कि आदमी आदमी को अपने समान नहीं समझता।

अब इसमें रुकावटों की ओर ध्यान करें तो पता चलता है कि हमारी अपरिपक्व सोच और हमें हमारे गुरु द्वारा सही मार्ग नहीं बताया जाना रुकावटों का कारण रहा है। इसके अलावा हम खुद ही मूर्च्छा में रहे यह भी एक कारण रहा है।

क्षत्रिय समाज किसी अन्य के द्वारा चालित रहा है, स्वविवेक को काम लेने की जहमत नहीं उठाई। आज भी मृत्यु पश्चात गरुड़ पुराण सुना जाता है, जिसमें ''सती'' होने पर बल दिया जाता है, जो आज के कानून में अपराध है। अपने ऊपर हुये अमानवीय व्यवहार को पीढ़ी दर पीढ़ी मत पालो, उन्हें माफ कर दो, समाज में मधुरता, समरसता व्याप्त होगी समता मूलक समाज की स्थापना होने में सहायता मिलेगी।

*

सोच का स्वरूप

मैं दूसरे से बेहतर हूँ,
यह है ईर्ष्या भाव का रूप।
मैं दूसरे के लिये बेहतर करूं,
यह सोचे वह है देव स्वरूप।।

– शम्भुसिंह राजावत 'अल्पज्ञ'

भक्त शिरोमणि मीरा बाई

– आलेख एवं चित्रांकन ब्रजराजसिंह खरेड़ा

बहुत ही नेक विचार आया है..किंतु बादशाही रुतबे के साथ जाएंगे तो संभव है न मिले... साधारण भक्त रूप में ही जाना होगा वो भी हिन्दू वेष में.
हिन्दू वेष में ही चलूंगा.. मैं जानना चाहता हूं चितौड़ जैसे राज्य की रानी होकर फकीरी में क्या पाया है?
दोनों गुप्त रूप से वृंदावन आ गये
हुजूर! आप मेरा अनुकरण करते रहना
आपका सुयश सुनकर दर्शनार्थ आये हैं
सुयश तो प्रभु का या उनके अनन्य भक्त का होता.. मेरा कैसा यश!
सुयश बहुत भारी होता है...राजा बादशाह नहीं सम्भाल पाते..
राजा होकर जो स्वयं को सेवक माने, अपनी जै-जैकार से अप्रभावित रहे, आम जन का हित सर्वोपरि रखे, हर धर्म के गुणीजनों का सम्मान करे वही यश का पात्र है
हमारी सच्चाई जान गई हैं! .. बिना पूछे श्रेष्ठ राजा के गुण बता भी दिए...आश्चर्य!
मीरा का भजन हुआ.. तानसेन भाव विभोर हो गये
आज मेरा जीवन धन्य हो गया.. बड़े-बड़े स्वर साधकों को सुना है किंतु आपके भजनों से जो आत्मिक शांति व आनन्द मिला वह अतुलनीय है।
श्रीमान् अब कुछ आप भी गा दीजिए!
जी!?..मैं?
हां! आप तो संगीत के महारथी हो.. मेरे कान्हा के लिए भी सुनाइये!
इस देवी से कुछ भी छुपा नहीं है...
तानसेन ने मीरा का ही एक भजन सुनाया...
मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई

अपनी बात

साधना की डगर बहुत कठिन है। क्योंकि जीवन के प्रत्येक आयाम में विपरीत साथ-साथ ही चलते हैं। जन्म के साथ चतली है मृत्यु। हर जन्मदिन मृत्यु का भी नया चरण है। श्रम के साथ-साथ चलती है थकान, विश्राम की आकांक्षा। प्रेम के साथ-साथ छाया की तरह लगी रहती है घृणा।

विपरीत जुड़े हैं। जितना ऊँचा होगा पवित्र शिखर, उतनी ही गहरी होगी उसकी खाई। पर्वत-शिखर ज्यों-ज्यों और ऊँचा होने लगेगा, खाई और गहरी होने लगेगी। पर्वत-शिखर की ऊँचाई और खाई की गहराई, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

जितना-जितना कोई व्यक्ति समझदार होने लगेगा उतनी-उतनी उसको अपने भीतर नासमझी दिखाई पड़ने लगेगी। ज्ञान के साथ-साथ अपने अज्ञान का बोध होता है।

जैसे-जैसे कोई व्यक्ति शान्त होता है, वैसे-वैसे उसके अशांत होने की क्षमता में भी बढत होगी। क्योंकि जितना वह शान्त होगा, उतना ही वह संवेदनशील हो जाएगा। उस संवेदना में छोटी-सी घटना भी बड़ा गहरा तहलका मचा देगी।

जितना कोई स्वस्थ होगा, उतनी ही उसके बीमार होने की क्षमता भी बढेगी। मरा हुआ आदमी तो बीमार नहीं हो सकता। जीवित आदमी ही बीमार होता है। एक अनूठी बात हम अक्सर देखा करते हैं कि बहुत स्वस्थ आदमी एक ही बीमारी में मर जाता है। अस्वस्थ आदमी कई तरह की बीमारियाँ आती रहें, तो भी सह लेता है। जो कभी बीमार नहीं पड़ा वह पहली ही बीमारी में विदा हो जाता है। जो सदा चारपाई पकड़े रहता है, उसे कोई बीमारी ले जाती नहीं।

जितना स्वस्थ आदमी हो उतनी ही उसके अस्वस्थ होने की क्षमता भी होती है। कोई जितना ऊँचा चढेगा, उतना ही गिरने का डर भी लगेगा। चढेगा ही नहीं ऊँचा, तो गिरने के भय का कोई सवाल ही नहीं। योग-भ्रष्ट शब्द है हमारे पास, पर कभी भोग-भ्रष्ट सुना है? भोग में भ्रष्ट होने का उपाय ही नहीं। सिर्फ योगी भ्रष्ट हो सकता है।

जो ऊँचा जाता है, वह गिर सकता है। जो जमीन पर ही रेंगता है, वह गिरेगा भी तो गिरेगा कहाँ? इसलिए ये दोनों बातें साथ-साथ चलती हैं और साधक को ज्यों-ज्यों वह साधना में आगे बढता है, त्यों-त्यों ज्यादा सावधानी बरतनी पड़ेगी। हम ऐसा कभी न सोचें कि हम आगे बढ रहे हैं तो अब सावधानी की जरूरत नहीं रहेगी। अब सावधानी की जरूरत भी बढेगी। सिद्ध तो प्रतिपल सावधान है।

जिसने उपलब्ध किया है, वह ऐसे चलता है, सावधान होकर, जैसे प्रतिपल शत्रुओं घिरा है। वह एक-एक कदम ऐसे रखता है, सोचकर, विचार कर, जैसे कोई सर्दी के दिनों में बर्फीली नदी में उतरता हो। सिद्ध की सावधानी परम है, आखिरी हो जाती है। सावधानी के लिये उसे प्रयास नहीं करना पड़ता लेकिन सावधानी उसकी गहन होती है। हम साधकों को तो सावधानी रखना अत्यन्त जरूरी है। क्योंकि जितना आगे बढेंगे, उतना ही गिरने का डर रहेगा। खाई बड़ी होने लगेगी इसलिए ज्यादा सावधानी की आवश्यकता रहेगी।

साधना में आगे बढने पर अहोभाव की थोड़ी बूंदा-बांदी होगी, तो शिकायत भी बढने लगेगी। परमात्मा से, संघ से जब कुछ मिलने लगेगा तो व्यक्ति और भी माँगने की आकांक्षा से भर जाता है। आज मिलेगा, तो अहोभाव। कल नहीं मिलेगा, तो शिकायत शुरू हो जायेगी। अहोभाव के साथ-साथ शिकायत की खाई भी जुड़ी है। इसलिए सावधान रहना होगा। अहोभाव को बढने देना है और शिकायत से सावधान रहना है। शिकायत तो बढेगी पर खाई में गिरना नहीं है, यह सावधानी बरतनी है।

खाई के होने का मतलब यह नहीं है कि गिरना जरूरी है। शिखर ऊँचा होता जाता है, खाई गहरी होती जाती है। इसका अर्थ यह नहीं कि खाई में साधक को गिरना ही पड़ेगा। सिर्फ सावधानी बढाते जानी होगी।

भिखमंगा निश्चिंत सोता है। सम्राट नहीं सो सकता। भिखमंगे के पास चोरी जाने को कुछ नहीं है। सम्राट के पास बहुत कुछ है। सम्राट को सावधान होकर सोना पड़ेगा। सावधानी बरतनी होगी। तभी वह अपनी सम्पदा बचा पाएगा, अन्यथा खो जाएगी। जैसे-जैसे व्यक्ति साधना में गहरा उतरता है, वैसे-वैसे उसकी सम्पदा बढती है। जो पाया है, उसके खोने का डर भी बढता है, खोने की संभावना बढती है। जो पाया है, उसके लुट जाने के अवसर भी आते हैं। साधक को उसे लुट जाने नहीं देना है। उसे बचाना है, साधक को सावधान रहना है।

साधक यदि ऐसा सोचने लग जाए कि साधना से कुछ उपलब्ध होना प्रारम्भ हो गया है, तो अब जागरूकता, सावधानी की झंझट मिटी। अब निश्चिंत होकर चादर ओढकर सोएंगे, तो वह भूल होगी। निश्चिंत तो हो जाएगा लेकिन असावधान होने की सुविधा साधना की डगर पर कभी भी नहीं है। सावधान तो रहना ही पड़ेगा। सावधानी को स्वभाव बना लेना है। वह साधन की ऐसी जीवन-दशा हो जाए कि उसे करना न पड़े, वह होती रहे। सावधान होना उसका स्वभाव-सहज प्रक्रिया हो जाए।

समझ बढेगी, तो साथ-साथ अहंकार भी बढेगा कि मैं समझने लगा। इससे बचना है। इस फंदे में यदि साधक पड़ा तो समझ कम हो जाएगी। बड़ा सूक्ष्म खेल है, बारीक जगत है, नाजुक यात्रा है। मैं समझ गया, यह तो अहंकार है। अहंकार नासमझी का हिस्सा है। जान लिया, अकड़ आ गई। अकड़ तो अज्ञान का हिस्सा है। यदि अकड़ आ गई तो जानना उसी वक्त खो गया। ख्याल रह गया जानने का पर जानना खो गया। ज्ञान तो निरअहंकार है। जहाँ अहंकार है, वहाँ ज्ञान खो जाता है। इसलिए प्रतिपल होश रखना पड़ेगा। जैसे दो खाइयों के बीच खिंची हुई रस्सी पर कोई नट चलता है, ऐसे ही साधना की डगर पर चलना है। प्रतिपल संभालना है। एक दिन ऐसी घड़ी आएगी कि संभालना स्वभाव हो जाएगा। तब संभालना नहीं पड़ेगा, साधक संभला ही रहेगा।

शिखर को, साधना के शिखर को तो बढाते रहना है पर पैरों को संभालते रहना है, ज्यों शिखर बढेगा, खाई का निमंत्रण भी महत्त्वपूर्ण होता जाएगा। जितना ऊँचा साधक जाएगा उतना ही खाई पुकारेगी कि आ जाओ, यहाँ विश्राम है। उससे सावधान रहना है। यदि गिर भी पड़े तो जितनी जल्दी हो सके, उठे और यात्रा पर चल पड़े। गिरना भी होगा। जैसे छोटा बच्चा चलता है, उठता है, गिरता है; फिर उठता है, फिर गिरता है और धीरे-धीरे गिरना बन्द हो जाता है। हम भी बच्चे थे तो गिरे थे, अब नहीं गिरते। सिद्ध का अर्थ यही है कि अब वह चलने में कुशल हो गया, अब साधना-डगर पर गिरता नहीं। हम सावधानी को इतना गहन बनाने का प्रयत्न करें कि वह हमारा स्वभाव बन जाय। इसी में हमारा विकास है।

*

पृष्ठ 21 का शेष

भोला कात्याल

कोली की बढती हुई बागी हरकतें देखकर ठकुरानी ने एक दिन भरी पंगत में खाना खा रहे लोगों को ताना मारते हुए कहा-खीर खाने को तो दौड़ आते हो मगर एक बागी को पकड़ नहीं सकते।' कात्याल को यह ताना हड्डियों तक लग गया। ***पानीदार घोड़ी चाबुक सह नहीं सकती। उसी तरह पानीदार व्यक्ति ताना नहीं सह सकता।*** उसने कोली के छिपने की जगह की जानकारी ले ली और उसी स्थान पर जाकर कोली को खत्म कर दिया। ठाकुर ने कात्याल को अपने गाँवों में से एक गाँव भेंट में दे दिया।

जुनागढ़ राज्य के साथ माणशिया वाला के युद्ध में कात्याल ने अपना शौर्य दिखाया। वह मारा गया मगर अमर हो गया।

कोली की पत्नी को भगा कर ले जाने वाला कोली दुख भोग कर मरा।

भैंसों के लालच में अन्याय करने वाले माणशिया जीवनभर पश्चाताप करते रहे। यदि लालच में आकर उन्होंने अन्याय नहीं किया होता तो घटे हुए सभी अनर्थ नहीं घटते।

*

हुकुम सिंह कुम्पावत (आकडावास, पाली)

शिव ज्वैलर्स

विश्वसनीयता में एक मात्र नाम

22/22 कैरेट हॉलमार्क आभूषण,
न्यूनतम बनवाई दर पर

शुद्ध राजपूती आभूषण (बाजूबन्द, पूछी, बंगडी, नथ आदि)
तैयार उपलब्ध एवं ऑर्डर से भी तैयार किये जाते है।

विशेषज्ञ :- सोने व चाँदी की पायजेब, अंगूठी, डायमण्ड, कुन्दन के आभूषण, बैंकॉक आईटमस आदि

जी-1, सफायर कॉम्पलेक्स, जैन मेडिकल के सामने, खातीपुरा रोड़, झोटवाड़ा, जयपुर

मो. 7073186603, 8890942548 ब्रांच :- बैंगलोर व मुम्बई

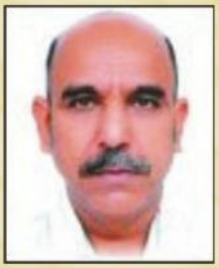

Sharwansingh Jaitawat
9326805192
020-65107720
65107740
27660466

Shree Mahavir Plywood & Hardware

Plywood
Frame
Flush Door

Moulding
Lipping
All Types of woods

Carving
Laminate
All Brass Fitting

Sharwansingh S/o. Dungarsingh Jaitawat
V.P.O. Dhunda Lambodi, Tal.-Sojat, Distt.-Pali

Shop Add. :- Chikhali Road, M.I.D.C., 'G' Block, PL. No. PAP-24
Kasturi Market, Sambhaji Nagar, Chinchwad, Pune-19

प्रेम पौशाक

समस्त राजपूती पौशाकों के होलसेल विक्रेता

भँवर सिंह पीपासर
9828130003

रिडमल सिंह महणसर
9829027627

शॉप नं. 93, जोधपुर स्वीट्स
के सामने, खातीपुरा रोड़,
झोटवाड़ा, जयपुर

दातारसिंह दुगोली
7339926252

गली नं. 16 कॉर्नर,
बी.जे.एस. कॉलोनी,
पावटा बी रोड़, जोधपुर

फरवरी, सन् 2018
वर्ष : 55, अंक : 02

समाचार पत्र पंजी.संख्या R.N.7127/60
डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City /411/2017-19

संघशक्ति
ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा,
जयपुर-302012
दूरभाष : 0141-2466353

E-mail : sanghshakti@gmail.com
Website : www.shrikys.org

श्रीमान्.....

.....

.....

स्वत्वाधिकारी श्री संघशक्ति प्रकाशन प्रन्यास के लिये, मुद्रक व प्रकाशक, लक्ष्मणसिंह द्वारा ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर से : गजेन्द्र प्रिन्टर्स, जैन मन्दिर सांगाकान, सांगों का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर फोन : 2313462 में मुद्रित। सम्पादक-लक्ष्मणसिंह